सिद्धयोग

संस्थापक
संरक्षक
सम्पादक

योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

श्री सिद्ध गुफा प्रकाशन, शंवाई, आगरा

[illegible]

प्रकाशक

इस अंक में—

क्रम संख्या लेख	लेखक	पृष्ठ
१. नमो नमस्ते	....	१
२. मृत्युंजय की साधना (हमारा विशेष लेख)	योगयोगेश्वर अनन्त श्री पद्ममोहन जी महाराज	२
३. उपासना क्यों और कैसे ?	आचार्य श्रीराम शर्मा	५
४. अग्निहोत्र	श्री पं० वैद्यनाथ शास्त्री	६
५. अनासक्त की सदा सुखी (कविता)	श्री रामसमीक्षणसिंह	११
६. प्राण तत्व	स्वामी विष्णुतीर्थ जी	१२
७. ब्रह्म की शक्ति	श्री सुखदयाराम शर्मा	१८
८. पत्रम्-पुष्पम्-फलम् तोयम्	संकलित	२१
९. योग द्वारा स्वभाव परिवर्तन	श्री त्रिलोकचन्द्र	२४
१०. पापों के भेद और उनके प्रायश्चित्त	श्री केशवदेव शास्त्री	२७
११. महर्षि अरविन्द और उनका दर्शन	श्रीकृष्ण शर्मा	३३
१२. भगवान की ओर से (कविता)	श्री राघवेन्द्र तिवारी	३४
१३. धर्म व विज्ञान	श्री सत्यनारायणप्रसाद	३५
१४. गीता और मानस	श्री गौरीशंकर द्विवेदी	३७
१५. संस्कार-कर्म-योग	श्री कमलेशकुमार	३६
१६. नित्यानुभव योग निरूपण	श्री संत महाराज बालेकुन्द्रीकर	४२
१७. प्रभुजी दर्शन दे दो आज (कविता)	श्री हुकमसिंह गौतम	४३
१८. सोहम् की उपासना	श्री शिवराम सोनार	४४
१९. श्री गुरुदेवजी के कार्यक्रम	टाइटिल	३

वार्षिक मूल्य १५ रुपया

संयुक्त सम्पादक
दिव्य
फोन ६२११८

सिद्ध योग

वर्ष ९
अङ्क ८

नवम्बर
१९७८

ध्यायं ध्यायं सदैव परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्,
मर्त्यो मृत्योर्मुखं विचरतो, मुक्ति मवाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थं बहुविधमदन् योगशास्त्रोपदेशान्,
कल्याणार्थं भवतु महतां सिद्धये 'सिद्धयोग' ॥

नमो नमस्ते

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशाङ्कः
प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च ।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः
पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते ।
नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते
नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व ।
अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वं
सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः ।

भावार्थ

भगवन् ! आप वायु, यमराज, अग्नि, वरुण, चन्द्रमा तथा प्रजा के स्वामी ब्रह्मा और ब्रह्मा के भी पिता हैं, आपके लिए हजारों बार नमस्कार होवे, आपके लिए फिर भी बारम्बार नमस्कार, नमस्कार होवे ।

और हे अनन्त सामर्थ्य वाले ! आपके लिए आगे से और पीछे से भी नमस्कार होवे, हे सर्वात्मन् ! आपके लिए सब ओर से ही नमस्कार होवे, क्योंकि अनन्त पराक्रमशाली आप सब संसार को व्याप्त किये हुए हैं, इसमें आप ही सर्वरूप हैं ।

हमारा विशेष लेख—

भूतजय की साधना

[योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज]

हमने 'सिद्धयोग' के पिछले अंकों में संयम के आधार पर होने वाले विविध फलों का वर्णन किया है। योगी का संयम ही सकल सफलताओं का दाता है। यह भी हम पहले कई बार बतला चुके हैं कि योगी की धारणा, ध्यान, समाधि ही संयम की आधार भित्ति है। जो मनुष्य धारणा, ध्यान, समाधि को क्रमशः बढ़ाता रहता है और उनमें दृढ़ भूमि हो जाता है, सफलता उसके सामने मूर्तिमान हो करके उपस्थित हो जाया करती है। भूतजय की साधना, एक अमर साधना है। जो योगी भूतजयी हो जाता है उसका प्रकृति पर पूर्णाधिकार हो जाता है और वह कभी भी गुण धर्मों से विचलित नहीं हो सकता। भगवान् पतञ्जलिदेव ने भूतजय की साधना को दर्शाते हुए निम्नांकित सूत्र का उल्लेख किया है—

स्थूल स्वरूप सूक्ष्मान्वयार्थ-
वत्वसंयमाद् भूतजयः ॥

(विभू० पा०, ४४, यो० द०)

अर्थात् पंचमहाभूतों के स्थूल, स्वरूप, सूक्ष्म एवं अर्थवत्व में संयम करने से योगी पंचमहाभूतों पर विजय प्राप्त कर लेता है। इस बात को इस प्रकार समझ लेना चाहिए—पृथ्वी आदि पंचमहाभूतों के शास्त्र वर्णित पांच-पांच रूप हैं, अर्थात् पृथ्वी के पांच, जल के पांच, अग्नि के पांच एवं आकाश के पांच। इस प्रकार ये पंच महाभूत पांच-पांच विभागों से २५ आकार वाले हो गये। भूतों के इन पांच-पांच आकारों को इस प्रकार से समझ लेना चाहिए :—

प्रथम—पृथ्वी का स्थूल आकार पृथ्वी।
द्वितीय—जल का स्थूल आकार जल।
तृतीय—अग्नि का स्थूल आकार अग्नि।
चतुर्थ—वायु का स्थूल आकार वायु।
पंचम—आकाश का स्थूल आकार आकाश।

ये पंच महाभूतों के स्थूलस्वरूप हैं। उसके बाद दूसरा स्वरूप इनका धर्म रूप है, जिनसे ये पहचाने जाते हैं जैसे—पृथ्वी का रूप मूर्तिः जिससे यह पृथ्वी है, इस प्रकार का ज्ञान होता है। जल का स्नेह, अग्नि की उष्णता, वायु का गति व कम्पन, आकाश का पोल-अवकाश

देना। यह इन पाँचों महाभूतों का धर्म रूप स्वरूप है।

तीसरा रूप—

गन्ध तन्मात्र, रस तन्मात्र, रूप तन्मात्र, स्पर्श तन्मात्र एवं शब्द तन्मात्र। यह इन पाँच महाभूतों का तन्मात्रा रूप सूक्ष्म रूप है।

चौथा अन्वय रूप—

अन्वय रूप का अर्थ है, जो अनुसरण करे। इन पञ्च महाभूतों में सतोगुण, रजोगुण एवं तमोगुण—प्रकाश, क्रिया व स्थितिशील होने के नाते से अन्वयी रहते हैं। इन्हीं गुणों के आधार पर पञ्च महाभूत अर्थवत्त्व के रूप में बदल जाते हैं।

पंचम रूप अर्थवत्त्व—

अर्थवत्त्व का अर्थ है—जिस कारण को लेकर ये पाँचों महाभूत अपने-अपने कार्यों में लगे हुए हैं। यह प्रकाश, क्रिया, स्थितिशील पञ्च भूतात्मक, इन्द्रियात्मक जितना भी द्रव्य है वह पुरुष के लिए है। पुरुष को भोग व अपवर्ग में प्रेरित करता रहता है। ज्यों-ज्यों योगी पञ्च महाभूतों उपरोक्त पांच-पांच रूपोंमें संयम करता है, त्यों त्यों वह शनैः शनैः भूतजयी हो जाता है फिर पञ्च महाभूतों के कार्यों पर उसका पूरा-पूरा अधिकार हुआ करता है। भूत, पञ्च महाभूत योगी का इस प्रकार से अनुगमन किया करते हैं, जैसे नवप्रसूता गौ अपने बछड़े के पीछे-पीछे घूमती रहा करती है। पढ़िये, इस सूत्र पर व्यास-भाष्य की पंक्तियाँ हैं।

व्यास-भाष्य :—

तत्र पार्थिवाद्याः शब्दादयोविशेषाः सहाकारादिभिर्धर्मैः स्थूल शब्देन परिभाषिताः, एतद् भूतानां प्रथमं रूपम्, द्वितीयं रूपं स्वसामान्यम्ः मूर्तिर्भूमिः, स्नेहो जलं, वह्निरुष्णता, वायुः प्रणामी, सर्वतोगतिराकाश इत्येतत्स्वरूपशब्देनोच्यते, अस्य सामान्यस्य शब्दादयो विशेषाः तथा चोक्तम्—"एकजातिसमन्वितानामेषां धर्ममात्रव्यावृत्ति" इति, सामान्य विशेष समुदायोऽत्र द्रव्यं, द्विष्ठो हि समूहः प्रत्यस्तमितभेदावयवानुगतः शरीरं वृक्षोयूथं वनमिति, शब्देनोपात्त भेदावयवानुगतः समूह उभये देव मनुष्याः, समूहस्य देवा एको भागो मनुष्या द्वितीयो भागस्ताभ्यामेवाभिधीयते समूहः, स च भेदाभेद विवक्षितः, आम्राणां वनं ब्राह्मणानां सङ्घः, आम्रवणं ब्राह्मणसङ्घः इति, स पुनर्द्विविधो युतसिद्धावयवोऽयुत सिद्धावयवश्च। युतसिद्धावयवः समूहो वनं सङ्घ इति। अयुतसिद्धावयवः सङ्घातः शरीरं वृक्षः परमाणुरिति, अयुतसिद्धावयवभेदानुगतः समूहो द्रव्यमिति पतञ्जलिः एतत्स्वरूपमित्युक्तम्, अथ किमेषां सूक्ष्मरूपं तन्मात्रं भूतकारणं, तस्यैकोऽवयवः परमाणुः सामान्य विशेषात्माऽयुतसिद्धावयव भेदानुगतः समुदाय इत्येव। एवं सर्व तन्मात्राणिः एतत्तृतीयं, अथ भूतानां चतुर्थं रूपं—

ख्याति क्रिया स्थितिशीला गुणाः कार्यस्वभावानुपातिनोऽन्वयशब्देनोक्ताः। अथैषां पंचमं रूपमर्थवत्वं भोगापवर्गार्थता गुणेष्वान्वयिनी गुणास्तन्मात्रभूतभौतिकेष्विति सर्वमर्थवत्. तेष्विदानीम्भूतेषु पञ्चसु पञ्च रूपेषु संयमात्तस्य तस्य रूपस्य स्वरूप दर्शनं जयश्च प्रादुर्भवति, तत्र पञ्चभूतस्वरूपाणि जित्वा भूतजयी भवति, तज्जयाद् वत्सानुसारिण्य इव गावोऽस्य संकल्पानुविधायिन्यो भूत प्रकृतयो भवन्ति।

यहाँ पर पृथ्वी आदि नाम रूप शब्दादिकों के विशेष हैं। समान आकार और धर्म वाले होने से स्थूल कहे गये हैं। यही पृथ्वी आदि महाभूतों का प्रथम रूप है।

दूसरा रूप उनका सामान्य जैसे भूमि की मूर्ति, जल का स्वरूप चिकनापन और अग्नि का स्वरूप दहनशीलता और वायु का रूप बहना और आकाश का रूप सर्वत्र व्यापकता। ये सब इनके स्वरूप से कहे गये हैं। इन सब सामान्यों के शब्दादि विशेष हैं। यह सब शास्त्रीय जाति की एकता होने पर भी धर्म से पृथकता रखते हैं यहाँ पर सामान्य और विशेष समूहों का द्रव्य मानना चाहिए, क्योंकि समूह दो भेद वाले होते हैं। एक वे जिनमें उनके भीतरी भाव छिपे रहते हैं, जैसे शरीर वृक्ष—शरीर रूपी वृक्ष, यूथ वन, देव मनुष्य: ये सब शब्द के अन्तर्गत एक दिखलाई देते हैं, किन्तु समूह के अन्तर्गत देव एक भाग है और मनुष्य दूसरा भाग है। किन्तु समूह रूप में एक कहे गये हैं। उदाहरण देकर बतलाते हैं। जैसे—ब्राह्मणों का—आमों का वन-ब्राह्मणों का संघ। इनके दो भेद होते हुए भी समास में एक शब्दसे कहे गये हैं। इनको पुनः दो प्रकार से कहा गया है—एक वह, जिसके अवयव सिद्ध हैं। दूसरा वह, जिसके अवयव सिद्ध नहीं हैं। वन और सभाका यह रूप युतसिद्धावयव कहलाता है। इसी में संघात, शरीर, वृक्ष, परमाणु अयुतसिद्धावयव हैं। अयुतसिद्धावयव और भेद वाले द्रव्य हैं। इस बात को भी पतंजलि जी मानते हैं। इनका सूक्ष्म रूप क्या है? वह तन्मात्रादि ऊपर की पंक्तियों में बता चुके हैं।

इसी प्रकार इनका चतुर्थ रूप अन्वय है, जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि सत्व, रज और तम—प्रकाश, क्रिया, स्थितिशील होने से रूपों के अनुगत रहते हैं। कोई पंच महाभूत प्रकाश स्थिति क्रियाशीलता के बिना ठीक-ठीक कार्यान्वित नहीं होते। यही उनका अन्वय रूप है एवं पंच महाभूतों का अर्थवत्व पुरुष के भोग और अपवर्ग के लिए हुआ करता है। योगी जब अपने संयम के बल से पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश को संयम का विषय बनायेगा, तो योगी के सामने महाभूतों का सामान्य रूप, मूर्ति आदि विशेष रूप, गन्ध तन्मात्र, रस तन्मात्र आदि सूक्ष्म रूप, सत्व, रज, तम आदि के अनुगत होने से अन्वय रूप और पुरुष के भोग और अपवर्ग के दाता होने से अर्थवत्व रूप क्रमशः प्रकट होता रहता है। योगी ज्यों-ज्यों अपने संयम के बल पर भूतजय की साधना में लगता है, तो वह भूतजयी हो जाता है और पंच महाभूतों के जितने भी कार्य हैं उन पर पूर्णरूपेण विजय प्राप्त कर लेता है। पंच महाभूतों पर जय प्राप्त कर लेने पर योगीको क्या-क्या सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं इसको हम आगे के लेख में समझाने का प्रयत्न करेंगे। ××

प्रसन्नता क्यों और कैसे ?

[तपोधन आचार्य श्रीरामशर्मा]

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन् ।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ।।
प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते ।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ।

(अध्याय २ श्लोक ६४-६५)

परन्तु राग-द्वेष रहित वशवर्ती मन वाला, अर्थात् स्वाधीन मन वाला पुरुष अपने वश में की हुई इन्द्रियों से विषयों को भोगता हुआ भी प्रसन्नता को प्राप्त होता है। प्रसन्नता में इसके समस्त दुःख नष्ट हो जाते हैं क्योंकि प्रसन्न चित्त वाले मनुष्य की बुद्धि शीघ्र ही स्थिर हो जाती है।

प्रसन्नता मनुष्य की सबसे प्रिय वस्तु है। प्रसन्न वह रहता है जो सुखी होता है। सुख का प्रमाण, चिन्ह 'प्रसन्नता' है। इस संसार में कौन ऐसा है जो प्रसन्न न रहना चाहता हो, पर देखा यह जाता है कि आये दिन कोई न कोई कारण ऐसे सामने आ उपस्थित होते हैं कि प्रसन्नता स्थिर नहीं रह पाती। बार-बार अप्रसन्नता, क्षोभ, क्रोध, चिन्ता, भय, निराशा आदि के कारण सामने आ उपस्थित होते हैं। चित्त खिन्न रहे, मन उद्विग्न एवं अप्रसन्न रहे तो कितनी ही सम्पदा, विद्या, विभूति पास हो, सब एक प्रकार से व्यर्थ ही है।

भगवान ने मानव जीवन की परम प्रिय वस्तु प्रसन्नता के प्राप्त न होने का कारण और उपलब्धि का उपाय बहुत ही संक्षिप्त एवं सारगर्भित रीति से समझा दिया है। उपरोक्त श्लोकों में बताया गया है कि राग द्वेष छोड़ देने और इन्द्रियों को विषयों से रोक लेने पर अप्रसन्नता के कारण नष्ट हो जाते हैं। जिसका मन वश में है उसे प्रसन्नता मिलनी ही चाहिए। प्रसन्न रहने का महात्म्य बताते हुए गीताकार ने कहा है कि प्रसन्न रहने से मनुष्य के सारे दुःख दूर हो जाते हैं और उसकी विवेक बुद्धि स्थिर हो जाती है।

लोगों का अनुमान है कि वस्तुओं के अभाव या प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण अप्रसन्नता एवं खिन्नता रहती है। पर यह बात इसलिए सही नहीं कि असंख्य मनुष्य ऐसे हैं जिनके पास गुजारे के लिए समुचित साधन मौजूद हैं, कोई खास प्रतिकूलता या सङ्कट भी सामने नहीं फिर भी वे खिन्न दिखाई पड़ते हैं। यदि अभाव या सङ्कट ही कारण होते तो साधन सम्पन्न और सकुशल लोग उद्विग्न क्यों

दीखते ? इसके विपरीत ऐसे भी अनेक लोग हैं जो अभावों और प्रतिकूलताओं से भरा जीवन-यापन करते हुए भी बड़े प्रसन्न एवं सुखी हों। वनवासी ऋषियों को भौतिक सुख सुविधा की वस्तुओं का प्रायः अभाव ही रहता था। भोजन, वस्त्र, मकान जैसी साधारण जीवनोपयोगी वस्तुएं भी उन्हें गरीब एवं साधनहीन लोगों की तरह घटिया स्तर की ही मिलती थीं, फिर भी वे कितना उत्कृष्ट एवं कितना आनन्दमय जीवन यापन करते थे। संसार के महान पुरुषों ने अनेक प्रकार के कष्ट सहे हैं, अभावग्रस्त जीवन व्यतीत किया है और सदुद्देश्य के लिए निरन्तर श्रम किया है। फिर भी उनकी अन्तरात्मा प्रसन्नता का ही अनुभव करती रही। इससे स्पष्ट है कि यह मान्यता सही नहीं कि समृद्धि या सत्ता के द्वारा आनन्द प्राप्त होता है।

सच्चा आनन्द उन्हें मिलता है जिसने अपने मन को जीत लिया है, वश में कर लिया है। मन को जीतने का अर्थ है उसे कुमार्ग पर चलने से मोड़ कर सन्मार्ग में प्रवृत्त कर देना। मन के सन्मार्ग पर चलने की पहचान है, गुण, कर्म, स्वभाव में सात्विकता की वृद्धि होना, सद्विचारों, सद्भावनाओं, सत्प्रवृत्तियों एवं सत्कर्मों का बढ़ना। यह लक्षण जब दिखाई देने लगें तब समझना चाहिए कि आत्मा वश में हुआ, मन जीता गया।

मन खाली नहीं रह सकता, उसमें दुष्प्रवृत्ति या सत्प्रवृत्ति, दैवी या आसुरी शक्ति अपना अधिकार अवश्य जमा लेगी, जैसे गिलास में जब पानी भरा होगा तो उसमें हवा नहीं रहेगी, जब हवा भरी होगी तब पानी नहीं रहेगा। इसी प्रकार मन का जितना भाग आसुरी शक्तियों ने घेर रखा होगा उतनी में से दैवी शक्तियों का पलायन हो चुका होगा और जितना भाग दैवी शक्तियों के अधिकार में होगा उसमें से आसुरी शक्तियां हट चुकी होंगी। असंयमी मन कुमार्गगामी रहता है, वह अनुपयुक्त बातें सोचता और अनुचित कर्म करने की व्यवस्था बनाता रहता है, पर जब वह संयत बन जाता है तब सद्विचारों में निमग्न रहता है, सदुद्देश्य अपनाता है, सद्गुणों को बढ़ाता है और सत्कर्मों की योजना तैयार कर देता है। वश में हुआ मन जब इस प्रकार कार्य करने लगेगा तब असन्तोष, खेद और विक्षोभ के—निराशा, चिन्ता और असफलताजन्य खिन्नता के भाव मन में उठेंगे ही नहीं। अप्रसन्नता का दर्शन होगा ही नहीं।

अज्ञान जब तक प्रबल रहता है, तब तक मनुष्य मनोवांछित परिस्थितियां प्राप्त करने के लिए लालायित रहता है और जब उनमें तनिक भी कमी रह जाती है तब वह दुखी एवं विक्षुब्ध होने लगता है। मनोकांक्षाओं की कोई सीमा नहीं, वे अपनी परिस्थितियों की सीमा तक ही सीमित रहें ऐसा कोई बन्धन उन पर नहीं, सफलता मनुष्य की इच्छा मात्र

से ही नहीं मिल जाती, उसके लिए प्रबल पुरुषार्थ, परिस्थितियाँ, अवसर, प्रारब्ध सभी कुछ अनुकूल होना चाहिए। यदि यह अनुकूलता न हुई, कामना का स्तर परिस्थितियों से ऊँचा रहा तो असफलता मिलेगी ही। असंयमित मन वालों की कामनायें इतनी बड़ी-बड़ी होती हैं कि उनकी पूर्ति में कमी रहना स्वाभाविक ही है। ऐसी दशा में उसे दुःख एवं विक्षोभ भी सदा ही रहेगा।

किन्तु यह परिस्थिति उस व्यक्ति के सामने नहीं आती जिसका मन वश में है, जिसने राग द्वेषों को—कामनाओं को—जीत लिया है। असंयमी मन वाला व्यक्ति जैसे अगणित कामनायें करता है वैसे ज्ञानवान, विवेकशील, आत्म विजेता नहीं करता। उसकी कामना कर्तव्यपालन तक सीमित हो जाती है। उस की इच्छा केवल मात्र इतनी रहती है कि धर्म कर्तव्यों के पालन में उसकी समस्त शक्तियाँ सुनियोजित रहें। उसके व्यक्तिगत सद्विचार उसे परिपूर्ण आत्म सन्तोष प्रदान करते रहते हैं, अपने सदुद्देश्यों पर उसे गर्व रहता है, सद्गुणों, सत्कर्मों और श्रेष्ठ स्वभाव के कारण दूसरोंका सहयोग एवं सद्भाव भी उसे मिलता है। फलस्वरूप अपने चारों ओर स्वर्गीय सुख, शान्ति बिखरी दिखाई देने लगती है। भीतर की श्रेष्ठता ही बाहर की शान्ति में परिणित होती है, यह सुनिश्चित तथ्य है।

सफलता प्राप्त करने का, सुखी एवं सन्तुष्ट रहने का एकमात्र उपाय है—आन्तरिक उत्कृष्टता का बढ़ना। आन्तरिक उत्कृष्टता की अभिवृद्धि का चिह्न है-गुण कर्म और स्वभाव का श्रेष्ठ होना। ऐसा व्यक्ति भौतिक सफलताओं और असफलताओं को तनिक भी महत्व नहीं देता। न तो लाभ प्राप्त होने पर हर्ष से उन्मत्त होता है और न हानि होने पर शोकाकुलित होता है। वह जानता है कि दिन और रात की तरह, धूप और छाँह की तरह इस संसार में लाभ-हानि का, सुख-दुःख का भी जोड़ा है। समयानुसार यह आते-जाते रहते हैं। समुद्र तट पर खड़े होकर ज्वार-भाटा का आनन्द देखने वाले दर्शककी तरह इसका आनन्द लेना चाहिए। खिलाड़ी की भावना से यह जीवन का खेल करना चाहिए। जिस प्रकार नाटक के पात्र कभी राजा, कभी रङ्क बन जाने से खिन्न नहीं होते और इस परिवर्तन को कला का प्रदर्शन मानते हैं, उसी प्रकार हमें भौतिक परिस्थितियों के उतार-चढ़ाव को भी शान्तचित्त से देखना चाहिए। सफलता मिलने पर न हर्षोन्मत्त होना चाहिए और न असफलता में खिन्न उद्विग्न। जिसने अपनी मान्यता इस प्रकारकी बनाली, उसी को राग-द्वेषसे विमुक्त कहा जायगा। लाभ से राग और हानि से द्वेष जिसे नहीं, जो कर्तव्य पालन को ही सर्वोपरि समझता है, जिसे अपनी सत्प्रवृत्तियों पर सन्तोष है, किसी भी दशा में दुःखी नहीं हो सकता, उसकी प्रसन्नता उससे दूर नहीं जा सकती, उसके चेहरे पर हर घड़ी मुस्कान बनी ही रहेगी।

जिसका अन्तरात्मा सन्मार्ग-गामी बनेगा, उसे न अप्रसन्नता का अनुभव होगा और न दुःख का। कामना-शील—कामी लोग ही दुःखी होते हैं। लालची को ही क्रोध आता है। अज्ञान-ग्रस्त ही मोह करते हैं और संसार में जितने भी दुःखी व्यक्ति हैं, वे काम, क्रोध, लोभ इन्हीं से दुःखी हैं। इन्हें त्यागने वाला व्यक्ति पुरुषार्थी, सुव्यवस्थित और विवेकशील बनेगा और वह अपनी हर समस्याओं को आप हल कर लेगा। गरीबी, अमीरी, उद्विग्नता एवं विपन्नता उसके पास भी न फटकेगी। दुर्गुण ही सारी विपत्तियों के कारण हैं। सद्गुणी, सद्भावी को पृथ्वी पर निवास करने वाला साक्षात् देवता है, वह जहाँ भी रहेगा, स्वर्ग का सृजन करेगा। उसके सम्पर्क में आने वाले दूसरे लोग शोक-सन्तापों से तरेंगे, उसके स्वयं खिन्न रहने का तो कोई कारण ही नहीं। जो खिन्न रहता है, जिस पर उदासी और निराशा छाई रहती है, उसे असंयत चित्त ही कहना चाहिए।

कई व्यक्ति ऐसी कल्पना करते हैं कि जिसका मन वश में हो जायगा, वह एक ही विचार में डूबा रहेगा और कोई कल्पनायें उसके मस्तिष्क में न आवेंगी। जब ध्यान पर बैठ जायगा तो ध्यान ही होता रहेगा और जब पुस्तक पढ़ेगा तो मन पुस्तक पर ही लगा रहेगा। इस स्थिति को लोगों ने भ्रमवश मन का वश में होना मान लिया है। वस्तुतः यह मानसिक शक्तियों के अभ्यास की एक कला मात्र है, इसे एकाग्रता कहते हैं। सरकस में जोखिम के काम करने वाले अभिनेता और बाजीगर इस एकाग्रता की कला के ही अभ्यस्त होते हैं। वैज्ञानिक, कवि, चित्रकार आदि कलाकारों की गतिविधियाँ भी एकाग्रता पर निर्भर रहती हैं। बन्दूक का निशाना इसी आधार पर लगता है। यह मानसिक शक्तियों को व्यवस्थित करने की एक कला है, जो सरकस करने वालों से लेकर बुद्धि-जीवी लोगों तक में उनकी अभिरुचि एवं प्रयत्नशीलता के आधार पर विकसित होती है। ध्यान लगाने की कला भी इसी प्रकार के अभ्यास से सीखी जा सकती है।

गीताकार ने मन को वश में करने की बात को जिस अर्थ में लिया है, वह यह है कि मन की कुमार्गगामिता को रोक कर उसे सन्मार्ग में प्रवृत्त किया जाय। तृष्णा और वासना से विरत कर उसे कर्त्तव्य पालन में, जीवन-शोधन में संलग्न किया जाय। मनोभूमि को पवित्र बनाया जाय, आदर्शों में श्रद्धा उत्पन्न की जाय, कर्त्तव्य-निष्ठा में तत्परता हो और सद्गुणों को निरन्तर बढ़ाते चला जाय। उत्कृष्ट व्यक्तित्व ही इस बात का प्रमाण हो सकता है कि इस व्यक्ति का मन वश में हुआ। जो निकृष्ट स्तर पर सोचता है, निकृष्ट कर्म करता है और अपने चारों ओर निकृष्ट वातावरण बनाये बैठा है, उसने एकाग्रता का अभ्यास कर लिया हो, देर तक किसी स्वरूप या विचार पर ध्यान लगाये रह सकता हो, उससे कुछ भी प्रयोजन सिद्ध होने वाला नहीं है।

अग्निहोत्र

[श्री पं० वैद्यनाथ जी शास्त्री, देहली]

शास्त्रकारों ने धर्म के तीन स्कन्ध माने हैं। वे हैं—यज्ञ, दान और तप। यज्ञ अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेध पर्यन्त कर्मों को कहा जाता है और विशेष परिभाषा में समस्त श्रेष्ठ कर्मों का नाम यज्ञ है, चाहे वे ज्ञान-विज्ञान सम्बन्धी कोई भी उत्तम कर्म हों। जहाँ इन यज्ञों का इतना बड़ा विस्तार है वहाँ पाँच कर्म आर्यों के लिए अत्यन्तावश्यक बताये गए हैं। वे कर्म हैं—ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, अतिथियज्ञ और बलिवैश्वदेवयज्ञ। इन्हें यज्ञ न कहकर शास्त्र की परिभाषा में महायज्ञ कहा जाता है। इस नाम से ही इनकी महत्ता का पता चल जाता है।

देवयज्ञ अग्निहोत्र से प्रारम्भ होकर विविध यज्ञों तक पर्यवसित है। कर्मकाण्ड की परिभाषा में गृह्य, श्रौत और धर्म एवं स्मार्त रूप से कर्मों का वर्णन किया जाता है। अग्निहोत्र इन तीनों में आ जाता है। यह एक ऐसा कर्म है जिसका करना अनिवार्य बतलाया गया है। इसका नाम भी अनुरूप ही है। इस अग्नि से सम्पन्न होने के कारण इसका नाम अग्निहोत्र है। यह कर्म अग्नि के माध्यम से ही होता है, अतः अग्निहोत्र है। यज्ञ तो व्यापक अर्थ में है और प्रत्येक श्रेष्ठ कर्म में प्रयुक्त हो सकता है, परन्तु 'अग्निहोत्र' ऐसे ही विशेष यज्ञ-कर्म के लिए प्रयुक्त होगा जिसमें अग्नि को कर्म का माध्यम बनाया जावे। 'अग्निहोत्र' पद में यह भावना निहित है कि अग्नि में किया जाने वाला होम अग्निहोत्र है। 'होत्र' पद 'हु' दानार्थक और अदनार्थक धातु से निष्पन्न होता है। इसका ही क्रियारूप 'जुहोति' है। 'अग्निहोत्र' शब्द से अग्नि में किया जाने वाला हवन अर्थ बनेगा। परन्तु यह हवन और इसका क्रियारूप 'जुहोति' विशेष परिभाषा के द्योतक हैं। इसी परिभाषा को लेकर शास्त्रकारों ने 'यजति' और 'जुहोति' में अन्तर देखा है। उपविष्ट होम और स्वाहाकार प्रदान होम 'जुहोति' में आते हैं। यद्यपि यज्ञरूप होने से आहुति योग्य द्रव्य, देवता अग्नि आदि और त्याग इसमें भी प्रधान स्थान रखते हैं। अग्नि को ब्राह्मण ग्रन्थों में देवों का मुख, अन्नाद, देवों का उदर और समस्त देवों का आत्मा कहा गया है, अतः अग्नि में होम करना है ही उपयुक्त। इस अग्नि के माध्यम से ही इन्द्र, वायु आदि समस्त भौतिक देवों में यज्ञ का

भाग पहुँचता है। इसलिए अग्निहोत्र शब्द इन्हीं दृष्टियों को लेकर अपने अर्थ को सार्थक करता है।

शतपथ ब्राह्मण में अग्निहोत्र को यज्ञों का मुख कहा गया है। इसके साथ ही यह भी बतलाया गया है कि यह 'जरामर्य सत्र' है। अर्थात् अत्यन्त जरावस्थायुक्त वार्धक्य और मृत्यु के कारण ही इसका परित्याग हो सकता है अन्यथा यह निरन्तर किया जाना चाहिए। इसलिए मानव का परम कर्तव्य है कि वह सायंप्रातः बिना नागा अग्निहोत्र की आहुतियाँ देवे।

इस प्रकार अग्निहोत्र की सार्थकता और उसकी कर्तव्यता पर प्रकाश पड़ने पर एक प्रश्न और भी लोग उठाते हैं कि फिर इसका उद्देश्य क्या वायु, मेघ आदि की शुद्धि करना मात्र ही है या और कुछ भी। इसका समाधान यह है कि यह वायु आदि का शुद्धीकरण तो रासायनिक प्रभाव से करता ही है, परन्तु यह स्वेच्छापूर्वक किया जाने वाला कर्म होने से संस्कार एवं अदृष्ट भी उत्पन्न करता है, जिसका उत्तम फल मनुष्य को मिलता है। इसी आशय को ध्यान में रखते हुए शतपथ ब्राह्मण के कर्ता ने कहा कि यह अग्निहोत्र स्वर्ग्य है। यह स्वर्ग के लिए एक प्रकार की नौका है। तात्पर्य यह है कि अग्निहोत्र स्वर्गीय सुख के फल वाला विशेष कर्म है। प्रत्येक स्वेच्छापूर्वक किया कर्म संस्कार उत्पन्न करता है और उसी के अनुसार फल मिलता है। अग्निहोत्र भी एक इसी कोटि का कर्म है, अतः इसका भी करने वाले को फल मिलता है। मीमांसा शास्त्र इन कर्मों के इस दार्शनिक आधार पर पर्याप्त प्रकाश डालता है।

अग्निहोत्र की अग्नि का वर्णन बहुत ही विस्तार के साथ वैदिक साहित्य में मिलता है। यह विस्तृत होते हुए भी बहुत ही वैज्ञानिक है। इस अग्नि की सात जिह्वाओं का अर्थात् सात प्रकार का वर्णन मिलता है। वे सात प्रकार काली, कराली, मनोजवा, सुलोहिता, सुधूम्रवर्णा, स्फुलिङ्गिनी, रूप-वती और लेलायमाना सात ज्वालाएँ हैं। सात ही प्रकार के ऋत्विज् भी होते हैं। छः ऋतुएँ और अधिमास का समय ही इसके सात समय हैं। बिल्व, आम्र, उदुम्बर, पलाश, बड़, अश्वत्थ, चन्दन ये सात प्रकार की इसकी समिधाएँ हैं। गायत्री आदि सात प्रकार के छन्दों से युक्त मन्त्रों का इसमें प्रयोग होता है। इसी आशय को यजुर्वेद १७/७९ में प्रकट किया गया है।

अन्तर्मुखी सदा सुखी

[श्री राम सजीवनसिंह, इलाहाबाद]

ऊर्ध्वमुखी होकर
घमण्ड से फूल गये
अधोमुखी होकर
दीनता में डूब गये
दोनों पाटों के बीच में
चिन्ता की गहराई नापते रहे
आधि—व्याधि के लपेट में
भय से निरन्तर कांपते रहे
जीवन कंटकित कर
हाथ पसार कर
दर दर—भटकते हो
याचना करते हो
पाते हो ठोकर
निराश होकर
कोसते हो जीवन को
अन्तर्मुख होकर देखो
तुम्हारे ही अन्दर
आनन्द का असीम सागर
शक्ति का भण्डार लिए
परम प्रकाश लिए
सुख का सामान सजाए विद्यमान है
यही तो योग का अनूठा सिद्धान्त है
बहिर्मुखी सदा दुखी
अन्तर्मुखी सदा सुखी

×××

प्राणतत्व

[स्वामी विष्णुतीर्थ जी महाराज]

ॐ प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे, यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्त्सर्वं प्रतिष्ठितम् ।

—अथर्ववेद, प्राणसूक्त, मं० १

प्राण शब्द के अर्थ पर विचार-विमर्श

प्राण वैदिक कोष का शब्द है और भारत की प्रायः सभी भाषाओं में इस शब्द का प्रयोग मिलता है। इसके विपरीत फारसी, अरबी, अंग्रेजी तथा अन्य पश्चिम की भाषाओं में प्राण शब्द न तो किसी अपभ्रंश रूप में मिलता है और न उनमें इसका कोई पर्यायवाची शब्द ही है। अंग्रेजी में प्राण का अनुवाद प्रायः (Breath) किया जाता है, परन्तु (Breath) का अर्थ श्वास है और प्राण श्वास से भिन्न है। स्वामी विवेकानन्द ने प्राण का अनुवाद (Psychic Force) किया है, परन्तु यह भी (यद्यपि बहुत कुछ निकट है) ठीक नहीं है, क्योंकि (Psychic) का अर्थ मानसिक होता है। प्राण मानसिक शक्ति भी नहीं है। जैसा कि आगे बताया जायगा, मन प्राण की शक्ति के आधीन कार्य करता है, इसलिए प्राण की शक्ति मानसिक शक्ति से भी सूक्ष्म और ऊँची शक्ति है।

जिस भाव में वैदिक साहित्य ने प्राण शब्द का प्रयोग किया है, वह वैदिककालीन ऋषियों के ही मस्तिष्क में था, पश्चिम के विद्वानों की बुद्धि या समझ में नहीं आया। आजकल उन ऋषियों की भारतीय सन्तानें भी साधारणतया प्राण का यथार्थ अर्थ नहीं समझतीं। प्रायः श्वास के लिए प्राण का प्रयोग किया जाता है और उसके इस अर्थ में प्रयोग किये जाने का कारण भी है। एक तो प्राचीन शास्त्रकारों ने प्राण को वायु कहा है और दूसरे प्राणायाम की स्थूल क्रिया पूरक-कुम्भक-रेचक द्वारा श्वास की गति के संयम से सम्बन्ध रखती है। परन्तु प्राण का यह रूढ़ अर्थ है। वैदिक साहित्य का वायु श्वास-प्रश्वास का वायु नहीं है। आक्सीजन, नाइट्रोजन आदि गैसें वायु विकार कहे जा सकते हैं।

वास्तव में वायु शब्द के अन्तर्गत विद्युत प्रवाह-धारायें भी सम्मिलित हैं और प्राणवायु की धारायें (Currents) उनसे भी सूक्ष्म होती हैं। वैदिक ऋषियों ने महत्तत्व और आकाश-तत्व की स्पन्दन क्रियाओं को वायु माना है और उस स्पन्दन का परिणाम तेज या अग्नि (Heat) कहा है। नीचे के स्तर पर

भी स्थूल रूप में वही निमित्त कार्य करता है अर्थात् वायु-विकारों (Gases) के जलकर जल रूप बनते समय भी तेज उत्पन्न होता है, जिसका नाम पश्चिम के विद्वानों ने सुप्त तेज (Latent heat) रखा है। बृहदारण्यक उपनिषद् की नीचे दी हुई श्रुति में यही भाव निहित है—

आपो वा अर्कस्तद्यदपां शर आसीत्तत्समहन्यत सा पृथिव्यभवत्तस्यामश्राम्यत्तस्य श्रान्तस्य तप्तस्य तेजो रसो निरवर्तताग्निः।

—२

स त्रेधात्मानं व्यकुरुतादित्यं तृतीयं वायुं तृतीयं स एष प्राणस्त्रेधा विहितः……।

—३

'जल अथवा सूर्य की किरणों को, जो जल के कारण थे, छोड़ा गया। उनसे ही पृथ्वी बन गई। उसमें श्रम हुआ, उस श्रम से तप्त होने का तेज रूपी रस अग्नि बना। उसने अपने आपको त्रिधा विभक्त किया, तीसरा वह आदित्य, वह वायु, वह प्राण ही त्रेधा कहा जाता है……।'

संहिताओं, उपनिषदों, ब्रह्मसूत्रों तथा तान्त्रिक ग्रन्थों का अवलोकन करने से यह प्रतीत होता है कि प्राण न तो आक्सीजन आदि किसी वायु विशेष का नाम है और न श्वास की क्रिया का ही नाम है, वरन् किसी अन्य तत्त्व विशेष को प्राण कहा गया है। वह तत्त्व क्या है? इसकी मीमांसा उपनिषदों और ब्रह्मसूत्रों में अनेक स्थलों पर मिलती है परन्तु फिर भी स्पष्ट रूप से उसके वास्तविक तत्त्व का ज्ञान नहीं होता। कहीं ब्रह्म को ही प्राण कहा गया है, कहीं इन्द्रियों को प्राण कह दिया गया है, कहीं शरीर के व्यापार को चलाने वाली शक्ति को प्राण कहा है। प्रश्नोपनिषद् में सूर्य को ही विश्व का प्राण कहा गया है और उसको विश्व के प्राणों का उद्गम केन्द्र माना है। वहां वर्णन है कि सूर्योदय होने पर रश्मियों द्वारा सारे विश्व में प्राणों का प्रसार होने लगता है—

स एष वैश्वानरो विश्व-
रूपः प्राणोऽग्निरुदयते ।

—प्र० १-७

यहीं आगे चन्द्र, अन्न और प्राणियों के वीर्य को भी प्राण का रूप कहा है। प्राण शब्द की व्युत्पत्ति 'प्र' उपसर्गपूर्वक 'अन्' धातु से है। 'अन्' धातु (प्राणन) जीवन-शक्ति एवं चेतना-वाचक है, इसलिये प्राण शब्द का अर्थ चेतन शक्ति के लिए ही किया जा सकता है। सब जीवधारियों को प्राणी कहते हैं। अचेतन जड़ पदार्थों के लिए प्राणी शब्द का प्रयोग नहीं किया जा सकता। प्राण का अर्थ जीवन-शक्ति भी किया जाता है।

उत्पत्ति—

उपनिषदों में प्राण तत्त्व की उत्पत्ति ब्रह्म से बताई गई है—

यथाग्नेः क्षुद्रा विस्फुलिङ्गा व्युच्चरन्त्येवमेवास्मादात्मनः सर्वे प्राणाः ।

—बृ० २, १, २, २०

जैसे अग्नि से छोटी चिनगारियां निकलती हैं, वैसे ही इस आत्मा से सब प्राण ।

एतस्माज्जायते प्राणो,
मनः सर्वेन्द्रियाणि च ।

—मु० २, १, ३

इससे प्राण, मन और सब इन्द्रियां उत्पन्न होती हैं ।

स प्राणमसृजत प्राणाच्छ्रद्धां खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवीन्द्रियं मनोऽन्नम् ।

—प्र० ६, ४

उसने प्राण को उत्पन्न किया, प्राण से श्रद्धा, बुद्धि, आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी, इन्द्रियां, मन और अन्न सब बने ।

आत्मन एषः प्राणो जायते ।

—प्र० ३, ३

आत्मा से यह प्राण उत्पन्न होता है ।

फिर प्राण तत्व को ही सारी सृष्टि का मूल कारण कहा गया है—

यदिदं किंच जगत्सर्वं प्राण एजति निःसृतम् ।

यह जो कुछ जगत है, सब प्राण से ही निःसृत होता है (अर्थात् प्राण सारे जगत् का प्रथम कारण है) ।

असद्वा इदमग्र आसीत्, तदाहुः किं तदसदासीदित्यृषयो वाव, तेऽग्रेऽसदासीत्, तदाहुः के ते ऋषय इति, प्राणा वा ऋषयः ।

—शतपथ ब्राह्मण ६, १, १, १

यह पहले सृष्टि के पूर्व में असत् था । तब कहा कि यह असत् क्या था ? ऋषि ही थे, वे सृष्टि के पूर्व में असत् थे । तब कहा कि वे ऋषि क्या थे ? प्राण ही ऋषि थे ।

यहां असत् का प्रयोग व्यक्त नामरूपात्मक दृश्य की सापेक्षता से अव्यक्त के अर्थ में किया गया है, अभाव के अर्थ में नहीं, क्योंकि अभाव से भाव की उत्पत्ति मानना वैदिक विचारधारा के विरुद्ध है ।

सृष्टि का उदय-स्थान होने के कारण प्राण को ज्येष्ठ तथा श्रेष्ठ भी कहा गया है—

प्राणो वाव ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च

—छां० ५, १, १

सृष्टि के आरम्भ में सबसे पूर्व प्राण उत्पन्न होता है । इन्द्रियां, मन और पञ्चमहाभूत सब उसी के विकार हैं । इसलिये—"क्या सांख्य का अव्यक्त अथवा प्रधान (जिसको मूल प्रकृति भी कहते हैं) प्राण ही अथवा प्राण उससे भिन्न कोई और तत्व है ?"—इसका उत्तर प्राण शब्द में ही छिपा हुआ है । सांख्य का अव्यक्त अचेतन प्रकृति माना जाता है, परन्तु प्राण चेतन शक्ति का सूचक है, इसलिए सांख्य के

जलवायु को अचेतन न मानकर चेतन ब्रह्म की चेतन शक्ति मान लिया जाय तो उसे प्राण कहने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती।

प्राण को कहीं-कहीं वायु कहा गया है, जैसे—

यः प्राणः स वायुः स एष वायुः पञ्चविधः। प्राणोऽपानो व्यानः उदानः समानः।

कहीं इन्द्रियों के व्यापार को ही प्राण कहा है, जैसे—

दशमे पुरुषे प्राणा आत्मैकादशः

—बृ० ३. ९. ४

अर्थात् मनुष्य की ये १० इन्द्रियाँ और ग्यारहवाँ मन प्राण हैं। इसका विवेचन—

न वायुक्रिये पृथगुपदेशात्

—ब्र० सू० २. ४

प्राण न तो वायु ही है, न इन्द्रियों की क्रिया, क्योंकि उपनिषदों में प्राण का इनसे पृथक् उपदेश मिलता है, जैसा कि प्रश्नोपनिषद् की श्रुति कहती है—

तान्वरिष्ठः प्राण उवाच मा मोहमापद्यथा अहमेवैतत्पञ्चधात्मानं प्रविभज्यैतद्बाणमवष्टभ्य विधारयामि।

—प्र० २. ३

उन इन्द्रियों और मन से उस वरिष्ठ प्राण ने कहा कि तुम मोह में मत पड़ो, मैं ही अपने पाँच रूप बनाकर इस शरीर को धारण कर रहा हूँ।

यस्मात्कस्माच्चाङ्गात्प्राण उत्क्रामति तदेव तच्छुष्यति।

—बृ० १. ३. १९

जिस किसी भी अंग से प्राण निकल जाता है, वही सूख जाता है।

ब्रह्मसूत्र २. ४. १७ के भाष्य में श्रीशंकराचार्य भगवत्पाद लिखते हैं—

एवं प्राप्ते ब्रूमः तत्त्वान्तराणि एव प्राणाद्वागादीनीति।

अर्थात् ऐसा सिद्ध होने पर हम कहते हैं प्राण वाक् आदि इन्द्रियों से भिन्न तत्त्व है।

ब्रह्मसूत्र के दूसरे अध्याय के चौथे पाद में इस विषय की बृहत् मीमांसा की गई है, आगे हम उसी का संक्षिप्त भाव देते हैं।

प्राणतत्त्व ब्रह्म से उत्पन्न होता है, इसलिए उसे ब्रह्म का विकार कहा जा सकता है। इसके प्रमाण में अनेक श्रुतियाँ उद्धृत की जा सकती हैं और उन सभी से प्राणतत्त्व का प्रथम आदि तत्त्व होना पाया जाता है। परन्तु ऐसी भी श्रुतियाँ मिलती हैं जिनमें प्राणों की संख्या का उल्लेख है, जैसे कहीं आठ, कहीं नौ, कहीं दस, कहीं ग्यारह, कहीं बारह प्राणों का वर्णन मिलता है। इससे यह सन्देह होता है कि प्राण नाम के अनेक तत्त्व होने चाहिये अथवा इन्द्रियों को ही प्राण कहकर उनकी संख्या कही गई है। कहीं इन्द्रियों और मन के व्यापारों को भी प्राण कहा गया है।

इसकी मीमांसा सूत्रकार व्यास भगवान् उत्तरमीमांसा अर्थात् ब्रह्मसूत्रों में करते हैं कि प्राण एक स्वतन्त्र तत्व है, परन्तु प्राण के आश्रित होने के कारण मन और इन्द्रियों की वृत्तियों को भी प्राण कह दिया गया है। वास्तव में मन, वाणी और इन्द्रियों से स्वतन्त्र एक अति सूक्ष्म, सबसे महान् और सबका संचालक होने के कारण प्राण सबसे श्रेष्ठ तत्व है। वाक्, चक्षु आदि कर्म तथा ज्ञानेन्द्रियाँ प्राण के वश में हैं और उसके अधीन अपना-अपना व्यापार करती हैं। इसी प्रकार अन्तःकरण की वृत्तियाँ भी प्राण नहीं हैं, वरन् प्राण के वश में हैं।

'सब इन्द्रियाँ प्राण के आश्रित हैं', यह बताने के लिये उपनिषदों में एक आख्यायिका है कि सब इन्द्रियों और मन में यह विवाद हुआ कि सबसे बड़ा कौन है? प्रत्येक ने स्वयं बड़ा होने का दावा किया। तब सब एक-एक करके शरीर से निकले, परन्तु शरीर उनके बिना अन्धा, बहिरा, गूंगा अथवा पागल होने पर भी जीवित रहा। अन्त में जब प्राण निकलने लगा तो उसके निकलने के पहिले ही सब इन्द्रियाँ और मन भी उखड़ने लगीं, जैसे बलवान् घोड़े के उछलने कूदने पर उसकी अगाड़ी पिछाड़ी की कीलें उखड़ने लगती हैं। तब सबने प्राण की प्रार्थना की कि आप न निकलें, आप हमारे स्वामी हैं, हम सब आपके ही सहारे रहते हैं। आप हमारे ज्येष्ठ, श्रेष्ठ और वरिष्ठ हैं।

इससे यह सिद्ध होता है कि मन और दसों इन्द्रियों से पृथक् प्राण कोई अति सूक्ष्म स्वतंत्र तत्व है। किसी किसी श्रुति ने इसे वायु कहा है, परन्तु वास्तव में प्राण वायु भी नहीं है और इन्द्रियों के व्यापार से भी भिन्न शक्ति है। श्री शंकराचार्य ने ब्रह्मसूत्र २, ४, ९ के भाष्य में कहा है—

न वायु प्राणो नापि करणव्यापारः।

अर्थात् प्राण वायु नहीं है, न वह इन्द्रियों का व्यापार ही है। श्रुति ने उसको वायु और इन्द्रियों से पृथक् कहा है, जैसे—

एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च।

—मु० २, १, ३।

तब क्या प्राण जीवात्मा से भी कोई स्वतंत्र सत्ता वाला तत्व है या आत्मा के अधीन कार्य करता है? यह अणु या विभु है? इन प्रश्नों का उत्तर यह दिया जाता है कि आकाश, वायु, अग्नि की तरह प्राणतत्व के भी आधिदैविक (Cosmic) और आध्यात्मिक (Microcosmic) दो रूप हैं। श्री शंकराचार्य 'अणुश्च' (ब्रह्मसूत्र २, ४, १३) के भाष्य में लिखते हैं—

आधिदैविकेन समष्टिव्यष्टिरूपेण हैरण्यगर्भेण प्राणात्मनैवैतद् विभुत्वमाम्नायते नाध्यात्मिकेन।

अर्थात् समष्टि-व्यष्टि रूप आधिदैविक हिरण्यगर्भ-स्वरूप प्राण को उपनिषदों ने विभु कहा है, उसके आध्यात्मिक रूप को नहीं। वह अणु है, इसीलिए मरण-समय जीव के साथ उत्क्रमण करता है। आध्यात्मिक रूप में प्राण अणु है और उसकी पाँच प्रवृत्तियाँ—प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान। अन्य इन्द्रियाँ सदृश जीव के अधीन कार्य करती हैं।

आधिदैविक रूप में प्राण तत्त्व को ही हिरण्यगर्भ कहते हैं और वह समष्टि-व्यष्टि दोनों में समान रूप से स्थित है। उसकी भी पाँच वृत्तियाँ कही जा सकती हैं। प्रश्नोपनिषद् में दोनों को इस तरह समझाया गया है—

आदित्यो ह वै बाह्यः प्राण उदयत्येष ह्येन चाक्षुष प्राणमनुगृह्णानः पृथिव्यां या देवतासैषा पुरुषस्यापानमवष्टभ्यान्तरा यदाकाशः स समानो वायुर्व्यानः तेजो ह वाव उदानः [illegible] ।

—ब्रह्मसूत्र ३, ८-९

निश्चयपूर्वक सूर्य ही बाह्य प्राण है। यह उदय होकर चाक्षुष प्राण को क्रियाशील करता है। पृथिवी में जो देवता रूपी (आकर्षण) शक्ति है, वही शरीर के अन्दर अपान को धारण करती है, जो आकाश की शक्ति है वह समान है। जो वायु में है, वह व्यान है और अग्नि ही निश्चय से उदान है।

वास्तव में सूर्य ही समष्टि प्राण का स्थान है और अन्य चारों उसी के रूपान्तर हैं। पृथिवी की आकर्षण शक्ति (Gravitation) अपान है, आकाशीय (Ethereal) शक्ति जिसके माध्यम द्वारा विद्युत्-स्रोत प्रवाहित होते हैं समान है, वायु की शक्ति व्यान है और आग्नेय शक्ति जो सबको तरल करके ऊपर उठा देती है, वह उदान है। इन सबका परस्पर आध्यात्मिक शक्तियों से सम्बन्ध है।

ऊपर जो कुछ कहा गया है उसका निष्कर्ष यह है कि प्राण एक सूक्ष्मातिसूक्ष्म चेतन तत्त्व है जो सारे विश्व का आदिकारण है और स्वयं ब्रह्म से उत्पन्न होता है। ब्रह्म की ईक्षण अर्थात् सृष्टि उत्पन्न करने की संकल्प शक्ति से उसका वैसे ही निःसरण होता है जैसे अयस्कान्त मणि (Magnet) से उसका रश्मि-मण्डल। अन्तर केवल इतना कहा जा सकता है कि अयस्कान्त जड़ एवं एक-देशीय है और ब्रह्म सर्वगत अथवा देशकालातीत चेतन है, इसलिए उसके तेज की किरणें भी चेतन होती हैं उस तेज को ही प्राण शक्ति कहते हैं। यहाँ यह शंका नहीं करनी चाहिए कि ब्रह्म से तेजो-मण्डल का निःसरण होने से ब्रह्म में विकार अथवा परिणाम होता है। ब्रह्म पूर्ण और नित्य विकार रहित रहता है। इस पर अधिक प्रकाश आगे डाला जायगा।

—'प्राणतत्त्व' से साभार

—* ब्रह्म की शक्ति *—

ब्रह्म के आदेश से प्रकृति और प्राणियों का खेल

[डा० सुन्दरराम शर्मा, मतोली, हरियाणा]

ब्रह्म एक ऐसी शक्ति है जिसको आज तक न जीता जा सका और नहीं उसे जाना जा सकेगा। बल्कि जीतना तो दूर रहा साधारणतया उसे कोई समझ भी नहीं सकता। जो भी उसे समझने का प्रयत्न करता है उसे तत्काल किसी प्रकार का प्रलोभन देकर, दिखाकर इस अपार संसार में ही रहने लायक बनाकर छोड़ दिया जाता है।

ब्रह्म का सबसे प्रबल हथियार और शक्ति प्रकृति है। इसी के द्वारा वह संसार को काबू में करता है, वह अपने स्थान से टस से मस नहीं होता। प्रकृति उसका सारा कार्य करने में समर्थ है। ब्रह्म तो केवल असीम ऊँचाई से लाइट मार कर सबको देख भर लेता है।

प्रथम उसकी लाइट उसके सूचना देने वाले पत्रकारों, राजदूतों, संरक्षकों के ऊपर पड़ती है। दूसरी जो उसके माने हुए अंशी अवतार हैं, उन पर पड़ती है और तीसरी लाइट सांसारिक प्राणियों पर पड़ती है।

प्रथम लाइट में ब्रह्मा, विष्णु, महेश, देवी-देवता तथा उनके अंशी अन्य अवतारी जीव आते और दूसरी लाइट में जो उनके अवतारी अंश पृथ्वी पर आये हुए हैं, उन पर पड़ती है और तीसरी लाइट सारे संसार में जितने भी जड़ चेतन प्राणी हैं, उन पर पड़ती है।

ब्रह्म एक सूर्य है, अन्य देवी-देवता उसकी किरणें हैं और उन देवी-देवताओं की किरणें संसार के ऊपर पड़कर किसी को खिलाती हैं तो किसी को मुरझा देती हैं। ब्रह्म व उसकी शक्ति हर समय किसी भी स्थान व प्राणी में नहीं रहती, केवल आवश्यकता पड़ने पर तत्काल प्रकट हो जाती। जैसे प्रकाश के लिए सर्वत्र बिजली के खम्भे और तार लगाये जाते हैं। आवश्यकता पड़ने पर तत्काल बटन दबा कर प्रकाश किया जा सकता है। ठीक उसी प्रकार आत्मा का बटन दबाकर ईश्वर रूपी बिजली का प्रकाश तत्काल देखा जाता है। इसी आधारभूत से सब प्रकृति और प्राणियों का खेल देखिये। प्रकृति अपने कर्त्तव्य का भलीभाँति पालन करती है और तनिक सा अपने कार्य में ढीलापन नहीं आने देती। उसका वास्तविक कार्य है संसार के सभी प्राणियों की देखभाल करना। ब्रह्म की आज्ञा से प्राणी को

मारना या जीवित रखना ही उसका एक मुख्य कर्त्तव्य है।

जब तक ब्रह्म की आज्ञा नहीं मिलती, प्रकृति किसी जीव का प्राणान्त नहीं होने देती और आज्ञा मिलते ही उस जीव को जीवित नहीं छोड़ती। चाहे वह लाख तालों के अन्दर कितने ही सुरक्षित स्थान में भीत से छुप करके क्यों न बैठ जाये।

प्रकृति के पाँच तत्व—पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश ये मुख्य अस्त्र तथा शस्त्र हैं। इनके द्वारा ही घटा-बढ़ाकर यह हर प्राणी को जीवनदान देती है तथा इन्हीं के द्वारा यह हर प्राणी को मृत्युदान दे देती है।

प्रकृति ब्रह्म की महत्वपूर्ण शक्ति है। संसार एक ड्रामा-स्टेज है, संसार के जीव ड्रामा के पात्र हैं। प्रकृति स्टेज इंचार्ज है और परब्रह्म ड्रामा के डायरेक्टर हैं। ब्रह्म ड्रामा करने के लिए प्रकृति को आर्डर देता है। प्रकृति साधन पात्र जुटाकर प्रस्तुत करती है। संसार के समस्त प्रकार के जीव अपना भिन्न-भिन्न प्रकार का ड्रामा करना प्रारम्भ कर देते हैं। जैसे कि कोई रो करके चला जाता है, कोई गायन करके चला जाता है, कोई मार करके चला जाता है। किसी की बारात चढ़ती है, तो किसी की अर्थी सजती है। किसी मां के लड़का पैदा होता है, तो किसी मां का नौजवान लड़का मरता है। किसी का घर चोरी होने से खाली होता है तो किसी का घर लाभ होने से भरता है। किसी का रिश्ता जुड़ता है तो किसी का नाता टूटता है। इसी प्रकार किसी के लिए प्रकृति दुःखदाई और किसी को सुखदाई बनती है।

समर्थ को नहिं दोष गुसाईं।

फिर शक्तिशाली को दोष कौन दे सकता है। जल, अग्नि, वायु, आकाश, तेज यह सब प्रकृति के ही तो अंग हैं। इन्हीं को कम-ज्यादा करके यह संसार को खेल खिलाती है और तमाशा करती है। प्रकृति और परब्रह्म के इस खेल का समझना योग विद्या के बिना नहीं हो सकता। योग विद्या इन सबके भेद व रहस्य का ज्ञान करा देती है। योग विद्या पूर्ण गुरु कृपा के बिना सुलभ नहीं हो सकती। पूर्ण गुरु बिना श्रद्धा, उत्तम संस्कार, दृढ़ विश्वास व दृढ़ आत्म विश्वास के बिना प्राप्त होना कठिन है।

जब प्रकृति शक्ति के कुछ उदाहरण देखिए एक बार कुछ डाकू एक आदमी को लाठियों से मार कर उसे नितान्त मृत समझ कर छोड़कर भाग रहे थे। मैं भी सरोज देखकर आ रहा था, वास्तव में मेरा वह रास्ता नहीं था जहां पर वह आदमी पड़ा था, किन्तु दिल में आया कि जरा इधर से चलें एक नीकर से दातुन तोड़ लेंगे और शौच होकर के भी चलेंगे। लगभग सौ कदम आगे रास्ते से अलग होकर मैं देखता हूं कि एक आदमी वहां पर खून से लथपथ हुआ पड़ा है। आवाज आई कि कोई

पानी पिला दो। समीप कुआं था। मैंने कुछ विचार न किया एकाएक पानी खींच के लाया और उसे पानी पिलाना प्रारम्भ किया। उसके मुख से खून आया।

मैंने तत्काल एक मात्रा फिटकरी की भस्म उसके मुख में डाली और पानी पिलाना प्रारम्भ किया। शरीर सर्वाङ्ग शीतल हो रहा था। टांगें तोड़ रखी थीं खून बह रहा था। यथा-सम्भव पट्टी आदि करके एक इन्जैक्शन कस्तूरी का दे दिया। कुछ गर्मी शरीर में आने से वह होश में आया। मैं घबराया। मारने वाले कहीं यहीं न छुपे हों, ऐसा न हो कि कहीं मेरी जान भी यहीं गुमा दें। यदि वह न मिले तो वह पुलिस केस है। पुलिस तो मुझे ही कहेगी कि आ न भाई अन्दर सो जा। अनेकों विचार दिल में आए किन्तु कोई चिन्ता न करते हुए उसे थाने तक ले जाने के लिए वाहन को ढूँढने लगा। अन्त में एक बैलगाड़ी वाला मिला और उस घायल को उसमें डालकर पुलिस स्टेशन तक पहुँचाया। खैर, पुलिस वालों ने मुझे साथ लेने का प्रयत्न किया। परन्तु मैंने उनसे सब सुन कर विदाई ली, हॉस्पीटल में उसे ले जाया गया और वह कुछ दिनों में ठीक हो गया। यह था प्रकृति का चमत्कार जो कि उस व्यक्ति को उसने मरने नहीं दिया।

दूसरा उदाहरण मेनका ने शकुन्तला को पैदा होते ही कठोर गरम पत्थरों युक्त पौड़ियों पर तालाब के किनारे फेंका था, जहाँ पर पक्षियों को छाया करने के लिए ही प्रकृति ने भेजा और प्रकृति ने ही कण्व मुनि को वहाँ पर स्नानार्थ भेजा। उसके द्वारा उसकी पालना भी कराई। तथा भक्त प्रह्लाद की रक्षार्थ प्रकृति ने ही लाल खम्भे की उष्णता दूर करके उस पर चींटी को चला कर दिखलाया और ब्रह्म शक्ति का विश्वास दिलाया। इसी प्रकार से प्रकृति अधिक तूफानों को चला कर गड्ढे, खाईं, खन्दकों को भरती है। दूषित व जहरीले वायु मण्डल को समाप्त करती है। घने वृक्षों के भारी टहने तोड़ कर उनके भार को हल्का करती है। जंगलों में आग लगा करके अनेक विषधारी व हिंसक जीवों के प्राणों को समाप्त करती है। संसार की अधिक उत्पत्ति की वायु मण्डल दूषित करके रोग फैला कर बीमारी पैदा करके करोड़ों ही प्राणियों को एक सैकिण्ड में निर्जीव कर छोड़ती है।

मच्छर-मक्खियों को समाप्त कर देती है। किन्हीं को शीतलता व किन्हीं प्राणियों को उष्णता प्रदान करती है। प्रकृति हर प्राणी के जीवन और मौतके कारण बनती है और फिर 'कारणात् कार्य भवति' के अनुसार सभी कार्य होते हैं। बात स्पष्ट है कि कारण के बिना कार्य कोई भी नहीं हो सकता।

अतः ब्रह्म और प्रकृति का तथा प्रकृति

और प्राणियों का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। प्रकृति सब हथियारों को भुठा कर सकती है और सभी लकड़ी, पत्थर, रेत, अग्नि आदि को हथियार बना सकती है।

यदि ब्रह्म प्रकृति को छोड़ दे तो उसका राज्य नहीं चल सकता और यदि प्रकृति ब्रह्म को छोड़ दे तो एक नयी मशीन की भांति प्रकृति भी बेकार होकर कलंकित हो जाएगी प्रकृति को जितना कार्य मिलेगा उसका रूप उतना ही निखरता जाएगा। और ब्रह्म की सत्ता और भी मजबूत होगी। इसलिए ब्रह्म ने प्रकृति को लिया, प्रकृति ने पंच भूतों को लिया और पंच भूतों ने समस्त प्रकार के प्राणियों को लेकर एक अद्भुत जीवन रूपी ड्रामा खेलना प्रारम्भ किया। तथा संसार रूपी स्टेज पर ही इस ड्रामे को भली भांति खेल कर उसको समाप्त करके सौंप दी।

अतः यही ब्रह्म की शक्ति प्रकृति है और उसके ही आदेशानुसार वह समस्त कार्य करती है। सारा संसार भी प्रकृति के ही वशीभूत है और उसके इशारों पर ही नाच-गाना करता रहता है। प्रकृति के ६ हथियार काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह और अहंकार भी है। जिनके द्वारा संसार का हर प्राणी बँधा रहता है, और हिल नहीं सकता। तथा ब्रह्म का ज्ञान भी यही ६ तत्व या जीवन के षड् दुश्मन भी जिन्हें कहा गया है नहीं होने देते इसके अतिरिक्त ६ फन्दे भी इनको कहते हैं। बस इन्हीं के सहयोग से प्रकृति हर प्राणी को रुलाती और हँसाती रहती है। कभी संसार को संकीर्ण बनाती है और कभी संसार का विस्तार करती है। शक्ति में वास्तविक रूप से प्रकृति भी ब्रह्म से कहीं कम नहीं है। भेद केवल इतना ही है कि वह ब्रह्म के वशीभूत होकर कार्य करती है, और ब्रह्म के बंधन में है।

ब्रह्म स्वाधीन है और प्रकृति पराधीन है। अतः यही ब्रह्म की शक्ति है प्रकृति, तथा इस प्रकार से ही ब्रह्म के आदेशानुसार ही प्रकृति सांसारिक प्राणियों के साथ खेल दिखला कर यथा स्थान पहुँच जाती है। यही प्रकृति और प्राणियों का पारस्परिक खेल है।

सब ईश्वर स्वरूप है

सब ईश्वर स्वरूप है इसी से सब में आत्मदेव परिपूर्ण है ऐसे सर्वात्म भाव को दृढ़ करना ही आत्मदेव का पूजन है। इस भाव में टिक कर सब भावाभाव को हटाकर निर्विकल्पता प्राप्त करने से आत्मा स्वानुभव से प्रकाशित होता है। यह ज्ञानियों का वास्तविक पूजन है।

पत्रम्-पुष्पम्-फलम्-तोयम्

नाद और मन

मनोमत्त गजेन्द्रस्य विषयोद्यानचारिणः ।
नियंत्रणे समर्थोऽयं निनाद निशिताङ्कुशः ॥

निनाद रूपी पैना अंकुश ही विषय रूपी उद्यान में विचरने वाले मन रूपी मत-वाले हाथी को वश में करने के लिए समर्थ हो सकता है। अर्थात् जैसे अंकुश द्वारा मतवाला हाथी वश में आ जाता है वैसे ही नाद के वश में मन आ जाता है।

× × ×

बद्धं तु नादबन्धेन मनः संत्यक्तचापलम् ।
प्रयाति सुतरां स्थैर्यं छिन्न पक्षः खगोयथा ॥

नाद रूपी बन्धन से बांधा गया मन, चञ्चलता को त्याग कर कटे पङ्ख जैसे पक्षी के अत्यन्त स्थिर होकर रहता है।

× × ×

सर्व चिन्तां परित्यज्य सावधानेन चेतसा ।
नाद एवानुसन्धेयो योग साम्राज्यमिच्छता ॥

सर्व चिन्ताओं को छोड़कर, सावधान चित्त द्वारा जो योगी राजयोग को चाहने वाला हो, उसे केवल नाद का ही अनुसन्धान करना चाहिए। अर्थात् नाद की आकृति वाली वृत्ति का प्रवाह करना चाहिए।

× × ×

नादोऽन्तरङ्ग सारङ्ग बन्धने वागुरायते ।
अन्तरङ्ग कुरङ्गस्य वधे व्याधायतेऽपि च ॥

यह नाद मनरूपी मृग को बांधने में जाल के समान होता है और यही नाद मनरूपी हरिण को मारने में व्याध के समान आचरण करने लग जाता है अर्थात् जैसे

जाल में फँसने पर हरिण की चञ्चलता दूर हो जाती है वैसे ही नाद में फँसने पर मन की चञ्चलता नहीं रह सकती है।

× × ×

अन्तरङ्गस्य यमिनो वाजिनः परिघायते।
नादोपास्तिरतो नित्यमवधार्या हि योगिना॥

नाद योगी के मन रूपी घोड़े को अश्वशाला के दरवाजे के अर्गला (साँकल) के समान मालूम होने लगता है इसी से योगी को प्रतिदिन नाद की उपासना करनी चाहिए।

मन के चंचल होने से उसमें घोड़े का आरोप किया गया है। जैसे अश्वशाला के दरवाजे की अर्गला द्वार को बन्द करके घोड़े को बाहर नहीं निकलने देती है वैसे ही नाद भी मन को बाहर नहीं जाने देता है।

× × ×

नाद श्रवणतः क्षिप्रमन्तरङ्ग भुजङ्गमः।
विस्मृत्य सर्वमेकाग्रः कुत्रचिन्न हि धावति॥

यह मन रूपी सर्प शीघ्र ही नाद को श्रवण करने से सम्पूर्ण संसार को भूलकर एकाग्र होकर फिर विषयों की ओर नहीं जाता है।

× × ×

काष्ठे प्रवर्तितो वह्निः काष्ठेन सह शाम्यति।
नादे प्रवर्तितं चित्तं नादेन सह लीयते॥

काष्ठ में प्रवृत्त हुआ अग्नि काष्ठ के साथ ही शान्त हो जाता है। इसी प्रकार नाद में प्रवृत्त हुआ अन्तःकरण नाद के साथ ही लीन हो जाता है।

× × ×

यत्किञ्चनाद रूपेण श्रूयते शक्तिरेवसा।
यस्तत्त्वान्तो निराकारः स एव परमेश्वरः॥

जो कुछ भी अनाहत नाद के रूप में सुनाई देता है वह शक्ति ही है और जो तत्त्वों का लय हो जाना है, वही निराकार परमेश्वर है। अर्थात् समस्त वृत्तियों के लय हो जाने पर जो स्वरूप में विद्यमान रहता है वही आत्मा है।

—हठयोग प्रदीपिका

योग द्वारा स्वभाव परिवर्तन

[श्री त्रिलोकचन्द, वाराणसी]

सांख्ययोग के अनुसार सत्व, रज और तम नामक तीन गुणों की साम्यावस्था का नाम प्रकृति है।१ गुणों की यह साम्यावस्था जब भंग अर्थात् अव विषम हो जाती है तब वह विकृति कहलाती है। समस्त जड़ पदार्थ विकृति के ही रूप हैं और सभी पदार्थों में तीनों गुण विषम अवस्थाओं में हैं। जिस पदार्थ में सत्व अधिक और शेष दो उसके अधीन वह सात्विक, जिसमें रजस् व तमस् अधिक हो वह क्रमशः राजसिक एवं तामसिक कहलाता है। इन तीनों गुणों के अलग-अलग स्वभाव हैं। जैसे सत्व का स्वभाव प्रकाश, ज्ञान, आनन्द, मृदुता, दया, क्षमा, सन्तोष आदि रजस् का स्वभाव आवेश, निन्दा, तिरस्कार, हर्ष-शोक, विजय-पराजय, आशा-निराशा, तृष्णा, अशान्ति, काम आदि। तमस् का स्वभाव अचेतनता, अक्षमता, निर्बुद्धिता, आलस्य, प्रमाद, निद्रा आदि।

मनुष्यों के शरीर, मन, बुद्धि आदि भी विकृति के ही रूप हैं। इनमें भी तीनों गुण विद्यमान हैं तथा उनके स्वभाव के अनुसार ही मनुष्यों के भी स्वभाव होते हैं। जिस व्यक्ति में जो गुण प्रधान होगा उसी के अनुसार उसका स्वभाव होगा।

यदि किसी प्रकार हम किसी गुण को बढ़ा सकें और किसी को घटा सकें तो मनुष्य के स्वभाव में परिवर्तन हो सकता है। लेकिन हमारे सामने प्रश्न यह है कि मनुष्य में किस गुण का आधिक्य करके हम एक श्रेष्ठ मानव के निर्माण में सहायता कर सकते हैं? इसके उत्तर में हमें यही कहना होगा कि किसी न किसी विधि द्वारा सत्व को प्रधान तथा रजस् और तमस् को उसके अधीन रखना होगा। इसका क्रम इस प्रकार रखना होगा कि सबसे अधिक सत्व और सबसे कम तमस् रहे। ऐसा करने के लिए हमारे पास आहार और व्यवहार दो प्रबल साधन हैं।

आहार —

आहार के विषय में एक सीधी-सादी बात प्रचलित है—

जैसा खाय अन्न वैसा होवे मन

मनुष्य जैसा भोजन करता है उसका स्वभाव भी वैसा ही बनता जाता है। घास-फूंस खाने वाला हाथी मांस खाने वाले शेर

१—सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः। सांख्यसूत्र १/६१

की अपेक्षा अधिक शान्त और सुखी होता है। अतः राजसिक और तामसिक आहार को छोड़कर सात्विक आहार करना होगा जिससे परिणामस्वरूप सत्व की वृद्धि होगी। छांदोग्य उपनिषद् में कहा गया है कि 'आहार की शुद्धि से सत्व की शुद्धि होती है और सत्व की शुद्धि से बुद्धि निर्मल और निश्चयी बन जाती है।'[१] अब प्रश्न यह उठता है कि किस प्रकार के आहार सात्विक होते हैं? शास्त्रों में सात्विक आहार के निम्न लक्षण बतलाये हैं—

जो ताजा, रसयुक्त, हल्का, स्नेहयुक्त, स्थिर, मधुर और प्रिय हो। जैसे गेहूँ, चावल, दूध, घी, चीनी, सैंधा नमक, शुद्ध व ताजे फल आदि। गीता में कहा गया है कि 'आयु, बुद्धि, बल, सुख और प्रीति को बढ़ाने वाले, रसयुक्त चिकने, स्थिर रहने वाले तथा स्वभाव से ही मन को प्रिय ऐसे आहार सात्विक पुरुष को प्रिय होते हैं।'[२] ध्यान रहे कि सात्विक भोजन भी बासी हो जाने पर तामसी बन जाता है और आवश्यकता से अधिक खा लेने पर राजसी। इतना ही नहीं, बल्कि ऐसा भोजन प्राण-हरण करने वाला महान तामसी बन जाता है। अतः सात्विक आहार भी ताजा और आवश्यकतानुसार ही होना आवश्यक है।

व्यवहार—

सात्विक व्यवहार होने पर सत्व के प्रधान रहने के अवसर रहेंगे। व्यवहार का यह विषय संस्कारों और वृत्तियों से सम्बन्ध रखता है। हम जैसा व्यवहार करेंगे वैसे ही संस्कारों को जाग्रत होने का अवसर मिलेगा, जिनसे वैसी ही वृत्तियाँ होंगी जो अपने अनुसार ही व्यवहार को प्रोत्साहन देंगी। सात्विक व्यवहार करने से सात्विक संस्कार उभरेंगे और सात्विक ही वृत्तियाँ होंगी जो सात्विक व्यवहार को प्रोत्साहन देंगी। इन सबके परिणामस्वरूप सत्व की प्रधानता होगी। व्यवहार संस्कार और वृत्तियों के सम्बन्ध को निम्न चित्र द्वारा समझा सकता है—

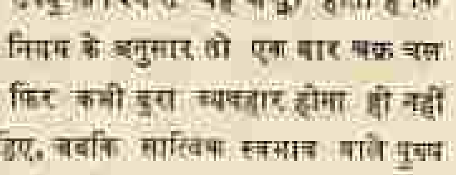

उपर्युक्त चित्र से यह शंका होती है कि इस नियम के अनुसार तो एक बार चक्र चल कर फिर कभी बुरा व्यवहार होना ही नहीं चाहिए, जबकि सात्विक स्वभाव वाले पुरुष भी कभी कभी राजसिक व तामसिक व्यवहार कर बैठते हैं। इसका कारण यह होता है कि

१—आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः। —छान्दोग्य उपनिषद्

२—आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः॥ —गीता १७/८

ऐसे समय पर वे प्रबल संस्कार जो सात्विक नहीं सात्विक संस्कारों को दबाकर उभर आते हैं तथा कुछ अन्य कारण भी होते हैं, जैसे शारीरिक वातावरण आदि।

सात्विक व्यवहार के प्रभाव को जानने के बाद इच्छा यह होती है कि कैसा व्यवहार सात्विक होता है? इसके उत्तर में हम कह सकते हैं कि जो व्यवहार काम, क्रोध, लोभ, मोह से रहित, दूसरों को हानि पहुँचाने के लिए नहीं तथा अपने अहं की पुष्टि के लिए भी नहीं, बल्कि सबकी भलाई के लिए कर्तव्य भावना से किया जाता है, वह सात्विक व्यवहार कहलाता है। जैसे दया, परोपकार, दान, धैर्य, अस्तेय, सत्यभाषण आदि। आहार और व्यवहार का वर्णन करने के पश्चात् भी एक कमी का अनुभव होता है, वह यह कि आज विज्ञान का युग है जिसमें मनुष्य अत्यन्त व्यस्त है। आज मानव शीघ्र ही परिणाम चाहता है, जिसके लिए यह आवश्यक हो जाता है कि आहार और व्यवहार के साथ कोई ऐसा साधन और भी होना चाहिए जिससे कि अपेक्षाकृत कम अवधि में ही सत्व की प्रधानता हो जाय। इस कमी की पूर्ति योग के एक प्रबल साधन, प्राणायाम के द्वारा की जा सकती है, जिसके करने से प्रकाश पर पड़े आवरण (रज व तम) का नाश होता है।[१] प्राणायाम को उच्चकोटि का तप माना गया है।[२] मनु महाराज के अनुसार "जैसे अग्नि से धोंके हुए स्वर्णादि धातुओं के मल नष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार प्राणायाम से इन्द्रियों के दोष नष्ट होते हैं।[३] अतः आहार और व्यवहार के साथ तीसरा साधन प्राणायाम है, जिसके द्वारा अपेक्षाकृत कम समय में ही सात्विक अवस्था प्राप्त की जा सकती है।

इस प्रकार सात्विक आहार से हम सत्व को बढ़ाकर सात्विक व्यवहार से उसे स्थिर रखने का प्रयत्न करेंगे तथा प्राणायाम के अभ्यास से अन्दर के बढ़े हुए रजस् और तमस् को घटायेंगे, जिससे सत्व का आधिपत्य होगा। साथ ही गुणों के स्वभावों के आधार पर मानव के प्राकृतिक स्वभाव में परिवर्तन किया जा सकता है। उसे राजसिक या तमस् प्रधान वृत्तियों वाला भी बनाया जा सकता है।

१—ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्। योग सूत्र २/५२

२—तपो न परं प्राणायामात् ततो विशुद्धिर्मलानां दीप्तिश्च ज्ञानस्य।
—द्वारा पंचशिखाचार्य

३—दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्॥ —मनुस्मृति ६/७

पापों के भेद एवं उनका प्रायश्चित

[श्री पं० केशवदेव शास्त्री]

[लेखक के द्वारा व्यक्त विचारों से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं।]

अथर्व वेद के अहोलिङ्गादि पाप्मगणों में निर्दिष्ट नरक बड़े ही भयंकर होते हैं। जो दुरात्मा पापी, सदा जिन नरकाग्नियों में पकाये जाते हैं, वे नरक पाप का भयङ्कर फल देने वाले हैं। उनके नाम इस प्रकार उल्लिखित हैं।

(१) तपन, (२) बालुका, (३) रौरव, (४) महारौरव, (५) कुम्भ, (६) कुम्भीपाक, (७) निरुच्छ्वास, (८) कालसूत्र, (९) प्रमर्दन, (१०) भयङ्कर, (११) असिपत्रवन, (१२) लालाभक्ष, (१३) हिमोत्कट, (१४) मूषावस्था, (१५) वसाकूप, (१६) वैतरणीनदी, (१७) श्वभक्ष्य (१८) मूत्रपान, (१९) पुरीषहृद, (२०) तप्त-शूल, (२१) तप्तशिला, (२२) शाल्मलीवृक्ष, (२३) शोणितकूप, (२४) भयानक शोणित-भोजन, (२५) वह्निज्वाला निवेशन, (२६) शिलावृष्टि, (२७) शस्त्रवृष्टि, (२८) अग्नि-वृष्टि, (२९) क्षारोदक, (३०) उष्णतोय, (३१) तप्तायः पिण्डभक्षण, (३२) अधः शिरःशोषण (३३) मरुप्रपतन, (३४) पाषाणवर्षा, (३५) कृमिभोजन, (३६) क्षारोदपान, (३७) भ्रमण, (३८) क्रकचदारण, (३९) पुरीषलेपन, (४०) महाघोर रेतःपान, (४१) सर्वसन्धि दाहन, (४२) धूमपान, (४३) पाशबन्ध, (४४) नाना शूलानुलेपन, (४५) अङ्गारशयन, (४६) मुसल मर्दन, (४७) विविध काष्ठ यन्त्र, (४८) कर्षण, (४९) छेदन, (५०) पतनोत्पतन, (५१) गदादण्डादिपीडन, (५२) गजदन्त प्रहरण, (५३) नानासर्प दंशन, (५४) नानाक्षुधशीताम्बु सेवन, (५५) घोरक्षाराम्बुपान, (५६) लवण-भक्षण, (५७) स्नायुच्छेदन, (५८) स्नायु-बन्ध, (५९) अस्थिच्छेद, (६०) क्षाराम्बुपूर्ण-रन्ध्रप्रवेश, (६१) मांसभोजन, (६२) महाघोर पित्तपान, (६३) श्लेष्म भोजन, (६४) वृक्षाग्र-पातन, (६५) जलान्तर्मज्जन, (६६) पाषाण-धारण, (६७) कण्टकोपरिशयन, (६८) पिपीलिकादशन, (६९) वृश्चिक पीडन, (७०) व्याघ्रपीडा, (७१) शृगालीपीडा, (७२) महिष-पीडन, (७३) कर्दमशयन, (७४) दुर्गन्ध परिपूर्ण, (७५) बहुशस्त्राग्र शयन, (७६) महा-तिक्तनिषेवण, (७७) अत्युष्ण तैलपान, (७८) महाकटुनिषेवण, (७९) कषायोदकपान, (८०) तप्तपाषाण तक्षण, (८१) अत्युष्ण शीत स्नान, (८२) दशनशीर्णन, (८३) तप्तायः शयन और अयोभार-बन्धन। इस भाँति करोड़ों प्रकार की अवर्णनीय नरक यातनायें कही गई हैं।

महापातकी—

(१) ब्रह्म हत्यारा (२) शराबी (३) स्वर्ण चोर (४) गुरु-पत्नीगामी (५) इन ४ से संसर्ग रखने वाले ये पांच महापातकी कहे हैं।

अतिपातकी—

(१) गौ के भेदकर्ता (२) अतिदैवेक देव-हीन (केवल शरीर पोषणार्थ ही) व्यर्थ पाक-कर्ता (३) सदा ब्राह्मणों की निन्दाकर्ता (४) ब्राह्मणों, गुरुजनों पर हुक्म चलाने वाला और (५) वेद वेद विक्रेता ये पांच अतिपातकी कहे गये हैं।

ब्रह्म हत्यारा —

मैं आपको धनादि दूंगा ऐसा विश्वास, संकल्प लेकर, ब्राह्मण को वचन देकर, बुला कर पीछे 'नहीं है' ऐसा रूखा उत्तर देने वाला 'ब्रह्म हत्यारा' कहा गया है।

ब्रह्मघाती—

जो स्नान या पूजनादि पुण्य कार्यको करते हुए ब्राह्मण के कार्य में विघ्न डालता है। जो पर-निन्दा, आत्म-प्रशंसा, असत्य भाषणरत रहता है, जो अधर्म का अनुमोदन करता है। जो दूसरों को उद्वेग में डालता है, दूसरों के दोषों की चुगली करता है, पाखण्डपूर्ण आचार में तत्पर रहता है, जो प्रतिदिन दान ही लेता है, प्राणियों के वध में तत्पर, अधर्म का अनु-मोदन करता है, ब्रह्महत्या के तुल्य पापकर्ता ब्रह्महत्यारा कहा गया है।

मदिरापान तुल्य पापों का वर्णन—

(१) निषिद्ध स्थानोंमें भोजन लेकर खाना (२) वेश्या संसर्गी (३) पतित पुरुषों का अन्न-भोजनकर्ता (४) उपासना का त्याग (५) मन्दिर के पुजारी का या पूजा का अन्न खाने वाला (६) शराबी स्त्री से सम्पर्क रखने वाले शूद्र के घर भोजनकर्ता द्विज, शूद्र की आज्ञा से दास कर्म करने वाले ये पाप मदिरा-पायी के तुल्य ही पापी कहे गये हैं।

भगवद्द्रोही, नास्तिक यमलोक में करोड़ों वर्ष तक केवल नमक खाते हैं। तब एक कल्प तक तप्त बालु पूर्ण रौरव नरक में डाले जाते हैं। इसी भांति ब्राह्मण-द्वेषी पापचारियों की आंखों में सहस्रों गर्म सुइयां चुभो दी जाती हैं। तदनन्तर नमकीन तप्त जलकी धारा में भिगोये जाते हैं। पुनः गर्म आरों से चीरा जाता है। विश्वासघाती, मर्यादा उल्लङ्घन करने, परान्न-भोगी अपना ही मांस खाते हैं। उनके शरीरों कुत्ते नोंच खाते हैं, उन्हें सभी नरक एक-एक वर्ष भोगने होते हैं। जो दान ही (प्रतिग्रह ही) लेते हैं, नक्षत्र-विद्या से जीविकोपार्जन करते हैं, जो पुजारी या पूजा का ही अन्न खाते हैं, वे कल्प तक इन सभी यातनाओं को भोगकर सदा दुःख भोगते हैं। तब काल सूत्र से पीड़ित कर गर्म तेलमें डुबोये जाते हैं। इसके उपरान्त नमकीन गर्म जल में पटका जाता है, वहां अखाद्य पदार्थ सेवन करना पड़ता है। फिर वे पृथ्वी पर आकर म्लेच्छ योनि में जन्म लेते

है, जो दूसरों को उद्वेग में डालने वाली ब्रह्मघाती, ब्रह्महत्यारे कहे जा चुके, उन पञ्च महायज्ञों के त्याग करने वालों को लालाभक्ष नरक में ढेला जाता है, वहां लार ही खानी पड़ती है। उपासना त्याग वालों को रौरव में ढकेला जाता है। जो ब्राह्मणों से कर लेते हैं, यातना देते हैं वे चन्द्र-तारागणों की स्थिति पर्यन्त नरक यातनाओं में पकाये जाते हैं। जो राजा जनता पर अधिक अधिभार कर लगाते हैं, वे अपनी सहस्रों पीढ़ियों के साथ पांच कल्पों तक नरक भोगते हैं।

जो पशु योनि से भिन्न स्थान, वियोनि (विजातीय योनि) और पशु योनि में वीर्य त्याग करता है, यमलोक में वीर्य ही भक्षण करता है। तदनन्तर चर्बी से परिपूर्ण अन्धकूप में पटक दिया जाता है, तब वह मनुष्य होकर सम्पूर्ण लोकों में निन्दा का पात्र बनता है। जो उपवास के दिन मैथुन करता है, वह ४ युगों तक व्याघ्रभक्ष नरक में डाला जाता है। उसमें व्याघ्र उसका मांस खाते हैं। जो स्वकर्म धर्म को त्यागने वाले पाखण्डी होते हैं और जो उनके सहयोगी होते हैं, वे सभी सहस्रों वर्ष पर्यन्त घोर नरक यातनाओं से पकाये जाते हैं। जो देवताओं या धार्मिक विद्या-मंदिर आदि के द्रव्य का दुरुपयोग, अपहरण करने वाले हैं और गुरु धनापहारी, गुरुनिन्दक हैं, जो अनाथ का धन हड़पते हैं, जो अनाथ से द्वेष करते हैं, वे कोटि कल्प सहस्रों तक नरक में निवास करते हैं। जो वेद निन्दक वेदाध्ययन नहीं करते हैं, उनका सिर नीचे पैर ऊपर करके दोनों पैरों को दो खम्भों में कांटे से बांध दिया जाता है। जो जल या देववृक्ष, देव-मन्दिर के समीप मलमूत्र त्याग करते हैं या नष्ट करते हैं, जो ब्राह्मण का धन या सुगन्धित काष्ठ चुराते हैं, वे इस लोक या परलोक में घोर नारकीय यातनाओं के उपरान्त दरिद्री बन दुःखी योनि भोगते हैं।

जो झूठी गवाही देता है, उसके पुत्र-पौत्र दुःखी नष्ट होकर रौरवादि नरकों की यातना भोगते। मिथ्यावादी के मुंह में सर्पतुल्य जोंकें भर दी जाती हैं तब गर्म क्षार जल में पटके जाते हैं। जो ऋतु काल में स्वधर्म पत्नी से सहवास नहीं करते, वे भी ब्रह्म हत्या के भागी नरक भोगते हैं। जो शक्ति रहते हुए भी किसी को अत्याचार करते देखते हैं, वे भी उसी अत्याचार के भागी हैं। जो पापियों के पापों को गिनकर दूसरों को बताते, वे पाप सत्य होने पर भी उस पाप के भागी होते हैं। यदि वे झूठे हुए तो द्विगुण पाप-फल के भागी होते हैं। जो पाप रहित पुरुष में पाप का आरोप करके उसकी निन्दा करते हैं, जो व्रत लेकर उसे पूर्ण किया बिना ही त्याग देते हैं, जो दूसरे के द्वारा किये जाने वाले व्रतों में बाधा डालते हैं वे अत्यन्त दुःखदायी, भयङ्कर श्लेष्म भोजन नामक नरक में कफ भोजन करते हैं। जो न्याय करने में, धार्मिक शिक्षा देने में पक्ष-

घात करता है, वह दस हजार प्रायश्चित करके भी पाप से मुक्त नहीं होता ।

न्याये च धर्मशिक्षायां-
पक्षपातं करोति यः ।
न तस्यनिष्कृतिर्भूयः,
प्रायश्चित्तायुतैरपि ॥

(धर्मराज युक्ति)

स्वर्णचोरी के तुल्य-पाप—

कन्द-मूल-फल, कस्तूरी, रेशमी वस्त्र, रत्नों की चोरी स्वर्ण की चोरी के तुल्य पाप जनक ही है, तांबा, रांगा, लोहा, कांसा, घी, शहद, सुगन्धि द्रव्य, सुपाड़ी, जल, चन्दन, कपूर, अपहरण साथ त्याग, धर्म कार्य का लोप करना, प्रतिपुरुषों की निन्दा, भक्ष्यपदार्थों का अपहरण विविध प्रकार के अन्नों की चोरी रुद्राक्ष अपहरण ये सभी स्वर्ण स्तेय तुल्य पाप कहे जाते है ।

गुरुपत्नी गमन तुल्य-पाप—

अनुजवधू-भगिनी, पुत्र-वधू, रजस्वला से संगम करना, नीच जाति की, मदिरा पीने वाली, परस्त्री, मित्र स्त्री तथा अपने पर विश्वास करने वाली स्त्री के सतीत्व का अपहरण कर्ता, असमय में मैथुन कर्ता, पुत्री-गमन, धर्म का लोप, शास्त्र की निन्दा करना, या इनमें से किसी भी एक के साथ संसर्ग कर्ता पुरुष भी गुरु पत्नी गमन तुल्य महापाप की कहा गया है ।

इनमें से अनेकों ही पापों का प्रायश्चित्त करने पर निवारण हो जाता है, जिनका उल्लेख ऋषिविधान में निर्दिष्ट है । उनमें से भी कुछ प्रायश्चित्त रहित है जो समस्त पापों के तुल्य बड़े भारी नरकादि देने वाले कहे है ।

प्रायश्चित्त से रहित पाप—

ब्राह्मण से द्वेष कर्ता, विश्वास घाती, कृतघ्न, शूद्रासेवी, निन्द्य अन्न भोक्ता, वेद-निन्दक, ब्रह्म-वर्णन, कथा, यज्ञ, सत्सङ्ग द्रोही इनका इहलोक, परलोक में कहीं भी उद्धार नहीं होता है ।

महापातकियों की नारकीय यातनायें—

ये महापातकी प्रत्येक नरक में एक-एक युग रहने के उपरान्त पृथ्वी पर सात जन्मों तक गधे होते है, तदन्तर १० जन्मों तक घावों से पूर्ण शरीर वाले श्वान, तदन्तर १०० वर्षों तक विष्टा कीट, तदनन्तर १२ जन्मों तक सर्प होते है । पुनः एक सहस्र जन्मों तक मृगादि-पशु, पुनः १०० जन्म वृक्षादि पुनः गोह, तदनन्तर १६ जन्मों तक म्लेच्छादि नीच जातियों में जन्म के बाद दो जन्म दरिद्र रोग पीड़ित, तथा प्रतिग्रह लेने वाले होते है इस कारण पुनः नरकगामी होना पड़ता है । गुरुओं में द्वेष दृष्टि वाले दो कल्पों तक रौरव में रहने के बाद भी जन्म चाण्डाल होते है ।

जो गौ, अग्नि, ब्राह्मण के लिए 'न दो' ऐसा कहकर मना करते है वे सौ बार श्वान

योनि के उपरान्त चाण्डाल योनि में आते हैं। पुनः विष्ठा कीट, पुनः ३ जन्म व्याघ्र होकर अन्त में २१ युगों तक नरक में पड़ते हैं। जो परनिन्दा परायण, कटुभाषी, दानादि में विघ्न डालने वाले हैं के पाप का यह फल है कि वे घोर मुसल और ओखली द्वारा कूटने के उपरान्त तीन वर्षों तक तप्त पाषाण उठाने को बाध्य होते हैं। तब ७ वर्ष तक काल सूत्र से विदीर्ण किये जाते हैं। इस प्रकार परधनापहारी निरन्तर नरकाग्नि में पकाये जाते हैं। जो परच्छिद्रान्वेषी चुगल करते हैं वे १ सहस्र युग पर्यन्त तप्त लौह पिण्ड भक्षण करने के उपरान्त अत्यन्त भयानक बिच्छुओं से जीभ को पीड़ित किया जाता है और तदनन्तर घोर निकृन्तन नामक नरक में आधे कल्प निवास करते हैं। पर स्त्री लम्पटों के साथ तप्तताम्र की स्त्रियाँ सुन्दर रूप यौवनावस्था युक्त हठात् रमण करती हैं। अन्त में वे स्त्रियाँ उन्हें विविध नरकों में ढेल देती हैं।

जो स्त्रियाँ स्वपति का परित्याग कर स्वैरिणी विहार करती हैं, उन्हें यमलोक में लोहे के तप्त पुरुष तप्त लौह शय्या पर बल-पूर्वक गिराकर चिरकाल तक रमण करते हैं। तदनन्तर एक सहस्र वर्ष पर्यन्त तप्त लौह खम्भे से खड़ी रहकर आलिंगन करती हैं, तब उन्हें गर्म नमक मिले जल में पटका जाता है और क्षारमय गर्म जल ही पिलाया जाता है। तब १०० वर्षों तक सभी नरकों की यातनायें भोगती हैं। जो ब्राह्मण, गौ, श्रेष्ठ क्षत्रिय राजा का वध करता है वह भी ५ कल्पों तक सम्पूर्ण यातनायें भोगता है। परनिन्दा करने वाले तथा परनिन्दा को आदर के साथ सुनने वालों के कानों में तप्त लौह-शलाकायें ठोंक दी जाती हैं। तदनन्तर कानों के छिद्रों में अत्यन्त गर्म तेल भर दिया जाता है। उनके कुम्भीपाक नरक में पटका दिये जाते हैं।

जो अपने कटु-वचनों से ब्राह्मणों का तिरस्कार करता है या कोई वस्तु देनेमें बाधक होता है वह ब्रह्म हत्यारा सम्पूर्ण नरकों की यातनायें सहकर दस जन्मों तक चाण्डाल होता है। जो दूसरे की चोरी कर अन्य दूसरों को दान देता है, वह घोर नरकगामी होता है। धनी को दान का फल प्राप्त होता है। जो ब्राह्मण, वैद्य, देव, तीर्थों के समक्ष कुछ देने की प्रतिज्ञा करने के उपरान्त पूरा नहीं करता है, वह लालभक्षण करता है। जो निर्दोष कन्याओं की निन्दा करता है वह शिलायन्त्र नरक में जाता है। बगीचा काटने वाले २१ युगों तक श्वभोजन नामक नरक में वास करते हैं, यहाँ कुत्ते उनका माँस खाते हैं। तदनन्तर सभी नरक यातनायें भोगते हैं। जो देव-मंदिर तोड़ते, पोखरा नष्ट करते हैं और फुलवाड़ी उजाड़ देते हैं वे सब नरक यातनाओं में पृथक्-पृथक् पकाये जाते हैं। तत्पश्चात् २१ कल्पों तक विष्ठा-कीट होते हैं तदनन्तर १०० बार चाण्डाल योनियों में जन्म लेते हैं। जो झूठा

जाते, मित्र-द्रोही है, वे चन्द्र-सूर्य की स्थिति पर्यन्त भयङ्कर नरक यातनायें भोगते हैं। जो पितृयज्ञ, देवयज्ञ का उल्लङ्घन करते हैं तथा वैदिक मार्ग से बाहर जाते हैं, वे पाखंडी सभी यातनायें भोगते हैं। जो विष्णु, शिव, ब्रह्मा में भेद बुद्धि रखते हैं, वे करोड़ों नरकों की यातनायें भोगते हैं। आत्मघाती, विश्वास-घाती घोर नरकों की यातनायें भोगते हैं।

यमलोक के मार्ग में पापियों के कष्ट—

पापी अत्यन्त पीड़ित, दीन भाव से तार-स्वर से रोते, चिल्लाते, रोते, सुदृढ़ सुख कण्ठ, तालु, ओठों से, यमदूतों से चाबुक खाते, अनेक आयुधों के आघात खाते, कहीं पङ्क कीचड़, कहीं तप्ताङ्गारों, कहीं तप्त वालु, कहीं तीखी धार की शिला, काँटों, पहाड़ों, गहन भयानक गुफाओं में होकर पाशों से बँधे अंकुशों से खींचे जाते हैं। किसी को नाक में नकेल डालकर खींचे जाते हैं, कोई आंतों से बांधकर उनके लिङ्ग के अग्रभाग से लोहे का भारी भार ढोते हुए, कोई नासिकाग्र भाग से लोहे के भार ढोते, उच्छ्वास लेते, बिना छाया जल तथा विश्राम के घसीट कर ले जाये जाते हैं।

इन उपर्युक्त निर्दिष्ट पापों के भयङ्कर परिणामों से मुक्त होने को श्रुतिस्मृति में सविधि प्रायश्चित वर्णित है। परन्तु इस दारुण कलिकाल के प्राणियों के लिए उनका पूर्णतया परिपालन सहज नहीं है। अथर्ववेद (ब्रह्मवेद) शौनकीय शाखा में वर्णित विधि सर्वसाधारण साधनहीन, क्रियाहीन किन्तु श्रद्धालु निष्ठा-वान अकिञ्चन के लिए अमोघ अस्त्र है। इसमें हाथ से प्राणायाम, स्मार्हविद, वाणी के तथा सत्य मानसिक आशीर्वादमात्र से भी कल्याण हो जाता है। यही ऋषि बल, मन्त्र बल, देव बल की पराकाष्ठा का ज्वलन्त प्रतीक है। ये पूर्व प्रकाशित (कांड व्याधि-निरोध) तथा इस मलव्याधि भेषज ग्रन्थ में प्रयोगपूर्ण सिद्ध प्रामाण्य विधियां वर्णित हैं।

—❀—

—० गृहस्थाश्रम ०—

यथा नदीनदाः सर्वे सागरे पान्ति संस्थितिम्।
तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम्॥

—मनु० ६/९०

जैसे नदी और बड़े-बड़े नद तब तक भ्रमते ही रहते हैं जब तक समुद्र को प्राप्त नहीं होते, वैसे गृहस्थ ही के आश्रय से सब आश्रम स्थिर रहते हैं। बिना इस आश्रम के किसी आश्रम का कोई व्यवहार सिद्ध नहीं होता।

—स्वामी दयानन्द

महर्षि अरविंद और उनका दर्शन

[श्रीकृष्ण शर्मा]

महर्षि अरविंद युग-पुरुष थे। वे एक महान साहित्यकार ही नहीं अपितु युग-द्रष्टा साहित्यकार भी थे। उन्होंने एक साहित्यकार के रूप में जहां बंकिम चन्द्र के प्रसिद्ध राष्ट्र-गीत "वन्दे मातरम्" का अंग्रेजी में श्रीचंद अनुवाद किया है, वहीं एक प्रथम कोटि के दार्शनिक के रूप में वेदों और उपनिषदों की मनीषा से युक्त होकर उन्होंने "सावित्री" नामक महाकाव्य की अंग्रेजी में रचना भी की है, जिसमें उन्होंने अपने आध्यात्मिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है।

किन्तु महर्षि अरविंद का दर्शन बुद्धिवाद पर आधारित नहीं है और न विगत में प्रतिपादित किसी सिद्धान्त का पिछलग्गू ही है। उन्हें वैयक्तिक साधना द्वारा जो आध्यात्मिक अनुभव प्राप्त हुए, उनको ही उन्होंने अपने दार्शनिक सिद्धान्तों का आधार बनाया है। इस प्रकार उनका दर्शन यथार्थवादी और पूर्णरूपेण व्यवहारिक है।

जगद्गुरु शंकराचार्य के 'ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या' के अद्वैतवादी सिद्धान्त को महर्षि अरविन्द असत्य मानते हैं। उनका मत है कि ब्रह्म और जगत अर्थात् जड़ जगत और चेतन आत्मा दोनों ही सत्य हैं। जो व्यक्ति इनमें से किसी एक को महत्व देता है उसका दृष्टिकोण एकांगी है। क्योंकि जड़ जगत को मानने वाला आत्मा की उपेक्षा करके बुद्धि को ही ज्ञान का मूल साधन मान लेता है, जब कि ज्ञान बुद्धि से भी परे की चीज है। ठीक इसी तरह आत्मा को मानने वाला जड़ जगत की उपेक्षा करता है, जिससे वह आलसी, निष्क्रिय और भाग्यवादी बन कर समाज और देश के लिए अनुपयोगी और बेकार हो जाता है। इसीलिए प्राचीन महर्षियों ने "ब्रह्म" को महत्व बता कर जड़ जगत् और चेतन आत्मा दोनों को ही महत्व दिया है।

महर्षि अरविन्द का मत है कि मनुष्य और जगत दोनों में निरन्तर विकास की प्रक्रिया चल रही है। यह विकास सार्थक और सोद्देश्य है, क्योंकि ब्रह्म एक है, जो अनेक रूप होकर सत्-चित् आनन्द प्रकट करता है (एकोऽहं बहुस्याम्)। आरम्भ में जड़ पदार्थ था—जिससे वनस्पति जन्मी, वनस्पति से पशु और फिर पशु से मनुष्य का विकास हुआ। अब मनुष्य से "अति मानव" जन्मेगा।

"अति मानव" के रूप में विकसित होकर

(शेष पृष्ठ ३६ पर देखें)

भगवान की ओर से

[श्री राघवेन्द्र तिवारी]

समय बीतते दिन नहीं लगते
किन्तु अधर्म के बीतने में समय लगता है
मेरे पुत्रो !
यह लगने वाला समय
मनुष्य की वह अवधि है
जिसे पाप कहते हैं
किन्तु मेरे निर्देशों में
ऐसा उल्लेख है कि जब
देश-काल अस्वीकृति की स्थिति में हो
तथा देह स्वीकृति की
तब, ऐ मनुष्य !
अपनी इन्द्रियों का निग्रह कर
यह शाश्वत धर्म है
प्रबुद्ध जन इसे योग कहते हैं
मेरी सत्ता इसकी अभिक्रिया
और मेरा प्रेमोन्मेष इसकी
सिद्धि प्राप्त कर लेना है।

यद्यपि नियमों की रचना सर्वोत्कृष्ट तत्वों को अपनाने के लिए हुई है तथापि तत्वतः नियमों के पालन करने का नाम आध्यात्मिक जीवन नहीं है। आध्यात्मिक जीवन अनुभव और ज्ञान का विषय है। आध्यात्मिक जीवन का अर्थ है उस ज्ञान की उपलब्धि जो तमाम शाब्दिक व्याख्याओं से परे है।

—मेहेर बाबा

धर्म व विज्ञान

[श्री सत्यवानप्रसाद तिवारी, एम० ए०]

अश्रद्धा और नास्तिकता की प्रवृत्ति को सबसे बड़ी उत्तेजना वैज्ञानिक दृष्टिकोण की वृद्धि से मिली है, टेक्नालॉजी पर आधारित सभ्यता से मिली है।

जीव-विज्ञान का आध्यात्मिक प्रभाव यह हुआ है कि मनुष्य किसी भी कार्य में अपने को स्वाधीन नहीं मानता। उसका विश्वास है कि प्राकृतिक नियमों के अधीन जैसे अन्य जीव चलते हैं वैसे ही मनुष्य भी चलता है। इसी प्रकार मनोविज्ञान ने भी मनुष्य को यह शिक्षा दी कि वह सज्ञान अवस्था में भी स्वाधीन नहीं है। ऊपर ज्ञान और चेतना की जैसी भी रोशनी फैली हुई हो मानव मन में पशुता के आवेग ज्यों के त्यों विद्यमान हैं और मनुष्य के सारे कार्य इन्हीं आवेगों से संचालित होते हैं।

वैज्ञानिक पृष्ठ-भूमि पर निर्मित नीतिशास्त्र का कहना है कि सनातन या नित्य कहलाने योग्य कोई नैतिक मूल्य नहीं है तथा अभिनव तत्त्व ज्ञान की मान्यता है कि जो वस्तु इन्द्रियों के द्वारा अथवा वैज्ञानिक साधनों के माध्यम से देखी या परखी नहीं जा सकती, वह सत्य नहीं मानी जानी चाहिए। विज्ञान का यह भी कहना है कि एक दिन विश्व की गति समाप्त हो जायेगी और सब कुछ निर्जीव हो जायगा। विज्ञान ने आधिभौतिक सुखों में तो काफी वृद्धि की, किन्तु मनुष्य के मन को उसने विपन्न बना डाला। आत्मा परमात्मा सृष्टि के ध्येय, उद्देश्य को अविचारणीय बता कर उसने मनुष्य को मानो यह शिक्षा दी है कि तुम्हारा काम जन्मना, बढ़ना, कमाना और खर्च करना, सन्तान उत्पादन करके वृद्ध होना, फिर इस विश्वास को लेकर मर जाना है कि मनुष्य शरीर भी प्रकृति परिचालित यन्त्र है और इस यन्त्र की आवश्यकताओं की पूर्ति के अतिरिक्त मानव जीवन का और कोई ध्येय नहीं है।

इतना सदोष होते हुए भी विज्ञान सार्वभौम तत्त्व है। इसमें धर्म जैसी प्रतियोगिता भावना नहीं है। वैज्ञानिक अनुसन्धान या आविष्कार चाहे जिस किसी भी देश में होता हो, सारे विश्व के वैज्ञानिक उसे ज्ञान क्षेत्र की प्रगति मानते हैं। भौगोलिक दृष्टि से भी

विज्ञान सार्वभौम विद्या है, क्योंकि सारे विश्व में उसका प्रचार है। चूंकि प्रकृति एक है, इसलिये विज्ञान भी एक ही हो सकता है। सार्वभौम मानव जाति का आविर्भाव विज्ञान का भी उद्देश्य है।

गलती विज्ञान और टेक्नालॉजी में नहीं, मनुष्य के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन में है। मनुष्य जैसे विज्ञान का दुरुपयोग कर रहा है, वैसे ही उसने धर्म का भी दुरुपयोग किया है, क्योंकि आज की दुनिया में हम सबके सब नास्तिक हैं। ईश्वरीय सत्ता में विश्वास हमारी पूजा और प्रार्थना सब कृत्रिम आचार है।

धर्म जीवन की पद्धति व स्वभाव है। वह ज्ञान व विश्वास से अधिक कर्म व आचरण में बसता है। यह नश्वर में अनश्वर का, अचिर में चिर का अनुसन्धान है। विज्ञान का उपयोग सर्वजन-कल्याण के लिए है, किन्तु आत्मा की पहचान भी आवश्यक है। धर्म प्राप्त करना नहीं जीवन होना है। धर्म की चेतनानुसार हमारा जीवन केवल हमारा ही नहीं है इसे आधार देने वाला जीवन कोई और है जो हमारे सीमित जीवन से विस्तृत और महान है। धर्म मनुष्य के इसी विस्तृत जीवन के अनुसन्धान की प्रक्रिया है।

(पृष्ठ ३२ का शेष)

मनुष्य शारीरिक मृत्यु को जीत लेगा और वस्तुतः वही रहा है। इस स्थिति की क्षीण झलक कभी-कभी सन्तों और महात्माओं को साधना द्वारा आध्यात्मिक स्तर पर मिलती है। लेकिन यह अभी झलक ही है, बुद्धि की भाँति मनुष्य का एक स्थायी अंग नहीं बन पाई।

महर्षि अरविन्द उस अति मानव के लिए योग और साधना द्वारा एक वातावरण बनाना चाहते हैं। इसीलिए वे अपनी योग-साधना को व्यक्तिगत सिद्धि या मुक्ति का साधन न मान कर, उसे सम्पूर्ण मानवता और ब्रह्म के लिए मानते हैं। इस प्रकार महर्षि अरविन्द का दर्शन आज के इस विभीषिकाओं से भरे हुए संसार और मनुष्य-मात्र के लिए कल्याण का मार्ग प्रशस्त करता है।

भारतीय-दर्शन के प्रकाश-स्तम्भ—

गीता और मानस

[साहित्यवारिधि, विद्यावारिधि श्री गौरीशंकर द्विवेदी 'शंकर']

महाभारत विश्व-साहित्य का एक महा मान्य ग्रन्थ-रत्न है। भारतवर्ष में तो वेदों के समान ही महाभारत का सम्मान होता है। कोई-कोई तो उसको पाँचवाँ वेद तक कहते हैं।

श्रीमद् भगवद् गीता महाभारत का ही अंश विशेष है। गीता में वर्णित ज्ञान सर्वकालिक और सर्वदेशीय है।

इस ग्रन्थ रत्न में दार्शनिक सिद्धान्तों के साथ ही साथ विश्व-मानवों को सदाचार, व्यक्तिगत, नैतिक बल, आत्म-श्रद्धा, प्राणिमात्र से स्नेह, जियो और जीने दो, वसुधैव कुटुम्बकम् और विश्व बन्धुत्व की उच्च भावनाओं के अमर-सन्देश प्राप्त होते हैं।

कोई भी हो, किसी भी धर्म का अनुयायी हो, किसी भी देश का निवासी हो और कैसी ही अवस्था में हो इस ग्रन्थ-रत्न के अनुशीलन से उसकी शिक्षा के अनुसार आचरण करने से शाश्वत-शान्ति प्राप्त कर सकता है।

विश्व-मानवों को गीता का एक समान सन्देश है कि विषमता, भेद-भाव, छल-कपट और अन्य समस्त समस्त दुष्कर्मों का त्याग करके मानव को विश्व-प्रेम, विश्व-शान्ति आदि सद्गुणों को अपना कर सदाचारी बनना चाहिए जिससे समाज राष्ट्र और जन-जन ऊँचा उठ कर विश्व-शान्ति स्थापित होने में अपना-अपना योगदान दे सकें।

गीता के अठारह अध्यायों में विषाद-योग से प्रारम्भ करके अनेकानेक दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है और निष्कर्ष घोषित किया गया है कि युक्तिसे और शक्तिसे जो जहाँ कार्य किया जाता है वहां सफलता अवश्य मिलती है।

यही भारतीय-संस्कृति और परम्पराओं का परमोत्कृष्ट आधार रहा है।

श्री रामचरित मानस समन्वयात्मक सिद्धान्तों का सर्वोत्तम, सरल, सुबोध ग्रन्थ है। 'मानस' में वेद, शास्त्र, पुराण, उपनिषद् और मन्त्र-तन्त्र का ज्ञान कुशलतापूर्वक संग्रहीत किया गया है जिससे साधारण शिक्षा प्राप्त विश्व मानव उससे भरपूर लाभ उठा सकते हैं।

'मानस' में यद्यपि श्री विष्णु के अवतार श्रीराम की कथा विस्तारपूर्वक लिखी गई है, किन्तु उसमें ऐसी हृदयरूपी विचारधारायें हैं जिनसे विश्व-मानव प्रभावित हो जाया करते हैं।

'गीता' की ही भाँति 'मानस' का भी स्पष्ट मत है कि अपने-अपने इष्टदेव पर दृढ़ आस्था रखकर सदाचरण करने से लोक और परलोक सफल बन सकते हैं।

'मानस' के प्रारम्भ में समस्त देवताओं की वन्दना करके समन्वय की सर्व प्रथम और उत्तम परम्परा का सूत्रपात किया है।

द्वैताद्वैत, अद्वैत और विशिष्टाद्वैत का उल्लेख करते हुए साकार और निराकार दोनों ही मतों का समर्थन कुशलतापूर्वक किया गया है।

'गीता' और 'मानस' दोनों का ही स्पष्ट सन्देश है कि संसार में वही मानव श्रेष्ठ है जो दूसरों का हित और परोपकार करता है।

'गीता' और 'मानस' के द्वारा भारतीय-साहित्य का मस्तक ऊँचा हुआ है। ये दोनों ऐसे प्रकाश-स्तम्भ हैं जो विश्व-मानवों को अन्धकार से निकाल कर ऐसे वातावरण में ले जाते हैं कि वे बरबस विश्व-प्रेम और विश्व-शान्ति का समर्थन करके भारतीय संस्कृति की सराहना करते हैं।

दो कवितायें—

(१)

❁ गुरु-मन्त्र ❁

भूलना है श्रेष्ठ यह, उपकार करके भूल जाए,
उपकार-कर्त्ता के सदा, हर्षित-हृदय गुण-गीत गाए।
कालिमा कलुषित-कलङ्कों की, हटेगी आप ही यदि,
'शङ्कर' सुभाषित-आचरण, सद्‌भावना, सद्‌ज्ञान आए।

(२)

—० प्रेम का प्रभाव ०—

मलिनता मानव-मनों में वास करती,
द्वेष, दुर्गुण, दम्भ के दुर्भाव भरती।
प्रेम परिपूरित परस्पर मिलें जन-जन,
तब सुसंगति स्वयम् सबकी विथा हरती॥

—श्री 'शङ्कर'

संस्कार-कर्म-योग

[श्री कमलेशकुमार, एम० एस सी०]

संस्कार शब्द का प्रयोग सर्वाधिक होता है अतः इसके विषय में ज्ञान होना नितान्त आवश्यक है। मानव में अन्तः करण की चेतना (मन) पर इन्द्रियों आदि के व्यापार का, जो कि संसार (अन्तः प्रकृति) एवं जगत (बाह्य प्रकृति) में हो रहा है, अपना एक विशेष प्रभाव होता है। यह प्रभाव जब नगण्य होता है तब यह हमारे मन पर अंकित नहीं हो पाता लेकिन जब यह प्रभाव वृहत् मात्रा में होता है तब यह हमारे मन पर अंकित हो जाता है। मन पर स्थायी रूप से अंकित होने वाला, इन्द्रियों आदि के व्यापार के कारण, प्रभाव ही संस्कार कहलाता है। उदाहरण के लिए हम प्रातः काल की अरुणोदय की लाली से संध्या बेला की गोधूली तक अनेकों व्यक्तियों के मुखारविन्दों का अवलोकन चक्षु इन्द्रियों के द्वारा करते हैं लेकिन उनमें से कुछ ही व्यक्तियों के मुखारविन्द हमारे मन पर अपना विशेष प्रभाव संस्कारों के रूप में अंकित करते हैं एवं शेष का कोई प्रभाव हमारे मन पर नहीं होता। यहां तक कि हमारी भेंट यदि उन व्यक्तियों से दोबारा फिर हो जाये तो हम उन्हें पहचानने में असमर्थ होते हैं। ठीक इसी प्रकार हमारी अन्तः चेतना के व्यापार में अनेकों विचार एवं भाव आते हैं लेकिन कुछ ही विचार एवं भाव अपना विशेष प्रभाव हमारे मन पर संस्कारों के रूप में अंकित करते हैं। चिन्तन करने पर हम पाते हैं कि हमारे मन पर इन्द्रियों आदि के व्यापार से अंकित होने वाले संस्कार केवल उस समय अंकित होते हैं जब हम अपने को इस व्यापार से विशेष रूप से सम्बन्धित कर लेते हैं अन्यथा नहीं। चिन्तन करने पर हम यह भी पाते हैं कि हमारी अन्तः चेतना में इन्द्रियों आदि के व्यापार के होने से मन में प्रतिक्रिया होती है। यदि यह प्रतिक्रिया विशेष होती है, तो हमारे मन पर इसका विशेष प्रभाव संस्कार के रूप में अंकित होता है, अतः हम कह सकते हैं कि मन की एक विशेष प्रतिक्रिया ही संस्कार है।

अब हम कर्म की परिभाषा संस्कार से करते हैं। कर्म क्या है? चिन्तन पर हम पाते हैं कि वह सब कुछ जो मन पर संस्कार अंकित करदे कर्म कहा जा सकता है। प्रत्येक कर्म बीज रूप से हमारी अन्तः चेतना में संस्कार के रूप में रहता है, जो कि समय परिस्थिति अनुसार सुषुप्ति से जाग्रत हो अपना प्रभाव व फल दिखाता है। जैसा कि खेत में पड़ा बीज

उचित वायु, नमी आदि मिलने पर समया-नुसार अंकुरित हो जाता है, ठीक उसी प्रकार अन्तः चेतना में संस्कार भी समय परिस्थिति अनुसार जाग्रत हो जाता है। हमारी अन्तः चेतना में असंख्य संस्कार संग्रहीत रहते हैं। जैसे जिसके संस्कार होते हैं, वैसे ही वह क्रिया कलापों द्वारा व्यक्त होता है।

हमें जो-कुछ भी ज्ञान होता है वह अपने संस्कारों के अनुरूप ही होता है, कारण हम बाह्य सत्ता का अध्ययन अपने संस्कारों से रंग कर करते हैं। उदाहरण के लिए, हमने बाह्य सत्ता में अमुक व्यक्ति "क" को देखा। हमारी चक्षु इन्द्रिय "क" के प्रतिबिम्ब को हमारे मन तक पहुँचाती है एवं मन तुरन्त ही अपने अंदर संग्रहीत संस्कारों से तुलना प्रारम्भ कर देता है। यदि "क" का कोई संस्कार मन पर पहले से ही अंकित होता है, तो मन "क" के प्रति-बिम्ब को उस संस्कार से तुलना करके, "क" के प्रतिबिम्ब को उस संस्कार से रंग देता है एवं हमें "क" संस्कार के अनुरूप ही गुण-दोष आदि विशेषण से युक्त हुआ मानने लगता है। यदि "क" का कोई संस्कार हमारे मन पर पहले से अंकित नहीं होता, तब हमारे मन पर हमारी अन्तः चेतना में संग्रहीत संस्कारों के आधार पर एवं उनके अनुरूप ही "क" का संस्कार अंकित हो जाता है। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि वह संस्कारों के अनुरूप तुलनात्मक अध्ययन से होता है या हम कह सकते हैं कि हम जो कुछ भी ग्रहण करते हैं, अपने संस्कारों के अनुरूप ही करते हैं। अतः किसी को भी यदि कुछ दिया जा सकता है तो उसके संस्कारों के अनुरूप होकर ही धीरे-धीरे दिया जा सकता है। चिन्तन पर हम पायेंगे कि हमारे मनके उठने वाले संकल्प भी संस्कारों के अनुरूप ही होते हैं। यदि संस्कार अन्धकारपूर्ण हैं, तो संकल्प कभी प्रकाशपूर्ण नहीं हो सकते। अतः हम कह सकते हैं कि हम जो भी करते हैं अपने संकल्प से अपने संस्कारों के अनुरूप करते हैं, इसमें किसी का कोई दोष नहीं होता। इस प्रकार हम जो भी करते हैं, ठीक ही करते हैं, इसको जान कर हमें चिन्तायुक्त हो प्रकाश की ओर अग्रसर होना चाहिए। हम यह भी कह सकते हैं कि हम वास्तव में स्थूल नहीं हैं बल्कि जो कुछ भी हैं, अपने संस्कारों के अनुरूप ही हैं।

उपरोक्त तथ्यों पर चिन्तन करके हम यह भी निष्कर्ष निकालते हैं कि हमें जो भी संसार भासता है, वह संस्कारों के अनुरूप ही भासता है। संस्कार सुख-दुःख का कारण हैं। मन में उठने वाली इच्छायें व संकल्प भी संस्कारों के अनुरूप ही होते हैं। इच्छा क्या है ? मन की वह तरङ्ग जो किसी कर्म फल में या कर्म में हमारे संस्कारों के अनुरूप हमारी सुखानुभूति के लिए हो इच्छा कही जा सकती है। सांसा-रिक प्राणियों की यही इच्छायें प्रवृत्ति की ओर ले जाती हैं। इच्छायें ही संसार है। इच्छा से प्रेरित कार्य के सिद्ध हो जाने से

सुखानुभूति होती है अन्यथा दुःख होता है, कारण इच्छायुक्त कर्म होने से हमारे कर्म व कर्मफलों में आसक्ति हो जाती है एवं आसक्ति के कारण उसका संस्कार हमारे मन पर अङ्कित होता है जोकि हमें दुःख-सुख की अनुभूति कराता है। यही सब कुछ मायाके बंधन का रूप हुआ हमें अन्धकार में भ्रमाता है।

मानव जीवन का लक्ष्य है शाश्वता की प्राप्ति या सच्चिदानन्द की प्राप्ति। सच्चिदानन्द क्या है? स्थायी आनन्द ही सच्चिदानन्द है, इसमें कोई इच्छा नहीं होती। वह नित्य तथा व एक रस रहता है। इससे स्पष्ट है कि सच्चिदानन्द की प्राप्ति उस समय तक सम्भव नहीं, जब तक हमारी अन्तःचेतना में संचित कर्मों के संस्कार संग्रहीत रहते हैं एवं मन संस्कारित होता रहता है, जिससे हमारे कर्म, कर्म ही रहते हैं। हम कर्मों का त्याग स्वरूप से नहीं कर सकते। अतः हमारे कर्म, कर्म ही न रहें, इसका अर्थ हो सकता है कि जब कर्मों का कोई संस्कार हमारे मन पर अंकित न हो। यह तभी सम्भव है जब हमारा मन प्रकाशरूप हो। योग की अवस्था में यह स्वमेव ही हो जाता है, लेकिन फिर भी अभ्यास के अन्तर्गत प्रकाशयुक्त चिन्तन पर हम पाते हैं कि यदि हम अपने को इन्द्रियों आदि के व्यापार से विशेष सम्बन्धित न करें, अर्थात् हम कर्त्ता के अभिमान से रहित हों या हम कर्मों व कर्मफलों से आसक्ति त्याग दें, अर्थात् केवल कर्तव्य-निमित्त मात्र से ही प्रकाशयुक्त हो कर्मों को कर्मों में शास्त्रानुसार संकल्प मात्र से करें, तब हमारे कर्म कर्म नहीं रहते एवं उनका कोई संस्कार मन पर अंकित नहीं होता। जहां तक संग्रहीत संस्कारों का प्रश्न है वे यौगिक प्रकाश (मन की अवस्था विशेष "समाधि", जो कि अभ्यास, तत्त्वज्ञान व गुरु कृपा से प्राप्त होती है, से प्राप्त तेज ही यौगिक प्रकाश है) से नष्ट हो जाते हैं या प्रकाश रूप हुए भाव-मात्र शेष रहते हैं, कारण समाधि का संस्कार शेष संस्कारों को नष्ट कर देता है एवं फिर समाधि का संस्कार भी नष्ट हो निर्बीज समाधि की प्राप्ति करा देता है लेकिन फिर भी चित्त प्रकाश रूप हुआ भाव-मात्र शेष रहता है। जहां तक प्रारब्ध कर्मों का प्रश्न है यौगिक प्रकाश के कारण वे भी उनके द्वारा प्राप्त फलों का कोई संस्कार न पड़ने के कारण जब तक स्थूल शरीर रहता है, भाव-मात्र भोगे जाते हैं लेकिन बंधायमान नहीं होते। इस प्रकार तत्त्व को जान कर, अभ्यास व गुरु कृपा से यौगिक प्रकाश को प्राप्त कर हम कर्म बन्धनों से मुक्त हो सच्चिदानन्द लाभ कर सकते हैं। इस समय हमारे द्वारा क्रिया रूप में होने वाले कर्म भी कर्म नहीं रहते कारण क्रिया मात्र कर्मों का भी संस्कार इस अवस्था में नहीं पड़ता।

योग वास्तव में मन की एक अवस्था विशेष है, जिससे केवल आनन्द ही आनन्द

★ निजानुभव योग-निरूपण ★

[श्री पंत महाराज बालेकुन्द्रीकर]

ब्रह्म चिन्मय है, ऐसा ज्ञान-परिपाक ही जागृति कहलाता है। "मैं कौन, मेरी समझ में नहीं आता," ऐसा कहने वाला ज्ञान ही स्वप्न कहलाता है। अच्छी रीति से हम ही चिन्मय ऐसा न जानने वाला ज्ञानही सुषुप्ति कहलाती है। यह निजानुभव तू कभी भी भूलना नहीं।

शुद्ध ज्ञान हम ही यह कहने वाले सद्विवेक हमारे में उदय होकर स्थिर हो जावे तो वह तुर्यपद कहलाता है। यह तुर्यपद भी अस्त होकर बच रहने वाला ही—यह तुर्यातीत ही परमात्मा यह सत्य जान।

सम्यग्भाव दृष्टि से परीक्षा करके, "हम ही परमात्मा, यह दृश्य जगत मिथ्या," ऐसा परमानुभव से जानना ही निरावरण समाधि कहलाती है। ऊपर बताई हुई निरावरण समाधि ही परब्रह्म, वही सत्य, ऐसा जानकर हम उस समाधि में निश्चल होकर दृढ़ता से परिशुद्ध रूप से रहें तो वही निःसमाधि कहलाती है। यह बताया गया—इस अविकलानन्द परब्रह्म को जो जानता है, वह उस अविकलानन्द ब्रह्म को प्राप्त हुआ निर्गुण योगी कहलाता है। यह परब्रह्म ही सुगम निर्गुणाध्यात्म योग प्राप्त होनेमें उत्तम कारण है। यह निजानुभव जानकर तू स्वस्थ हो।

(पिछले पृष्ठ का शेष)

होता है, संसार भ्रम-मात्र भासता है, इच्छायें उत्पन्न ही नहीं होती एवं सम्पूर्ण कर्म प्रकाश रूप हुए संकल्प-मात्र से स्वमेव होते रहते हैं। उनका मन पर कोई भी संस्कार अंकित नहीं होता, मन भी प्रतिक्रिया से रहित हुआ प्रकाश मय होता है, मन इन्द्रियाँ अपने-अपने अर्थों में वर्तती हैं या सम्पूर्ण गुण (अन्तः प्रकृति) गुणों को गुणों में बर्तते हैं। वास्तव में योग की अवस्था में हम निरपेक्ष अध्ययन करते हैं, कारण मन संस्कारों से रहित हुआ प्रकाश रूप होता है, अतः यही अध्ययन परम सत्य के निकटतम होता है, आनन्द युक्त होता है, प्रकाश रूप होता है। ठीक है निरपेक्ष अध्ययन के आधार पर हम कह सकते हैं कि जो जो कहता, करता, निष्कर्ष निकालता अथवा ग्रहण करता है, ठीक ही करता है, कारण अपने मन के संस्कारों से तुलना करके कहता, करता, निष्कर्ष निकालता अथवा ग्रहण करता है। योगी इस सत्यता को जान कर सदा मस्त रहते हैं एवं किसी से भी अपने को सम्बन्धित नहीं करते। वास्तव में मन को प्रतिक्रिया से रहित कर संस्कारों को प्रकाश रूप करना ही योगाभ्यास है जो केवल गुरु कृपा से ही पूर्ण हो सकता है।

प्रभु जी दर्शन दे दो आज !

[श्री हुकुमसिंह गौतम एम० ए०,]

—१—

समय के पंख कटे जाते
उम्र के वर्ष घटे जाते
आत्म-विक्षोभ भरा एकांत
अर्न्तनाप्यासी, जीवनभ्रांत
जलन के उर में तुम आकर—
ध्यान की धुरी संभालो आज।

—२—

दीन-कुटिया का दीपक हो
रात्रि का यहाँ नहीं विश्राम
निर्दयी बादल हों बाहर
जगत् बन जाये वृन्दाधाम
प्रीति-पथ पर तुम आकर देव !
भक्ति की ज्योति जगाओ आज।

—३—

विकलता में बैठा-बैठा
अश्रु-अंजलि मैं पीता हूँ
जगत की नैतिकता में बँधा
आत्म-रव से मैं रोता हूँ
हृदय की प्रतिध्वनि बन घनश्याम !
ज्योति की धुरी दिखाओ आज।

—४—

विहग-कलरव को जीवन दो
प्रार्थना करता हूँ भगवान
कर्म की गंगा बहने दो
वंदना करता हूँ छविधाम
थके क्रन्दन पर आकर तुम !
शक्ति की ओर बढ़ाओ आज।

—५—

अँधेरे घर में आकर तुम
सुप्त-सुमनों में भरदो गान
उजड़ते उपवन के मधु-ऋतु
स्वयं पतझर को दो वरदान
तृषित चातक के मनमोहन !
चन्द्र-अमृत बरसाओ आज।

हजरत मंसूर को आत्म-साक्षात्कार—

सोहम् की उपासना

[श्री शिवराम सोनार, एस॰ आई॰ टी॰]

'सिद्धयोग' के पिछले अङ्कों में सन्त कबीर के जीवन की योग-ऐश्वर्यपूर्ण घटनाओं का उल्लेख मैं कर चुका हूँ। इस अङ्क में मैं सद्गुरु कबीर से दीक्षित तथा उनके कृपापात्र हजरत मंसूर की जीवन घटनाओं के कुछ अंश देने की कोशिश कर रहा हूँ। इससे 'सिद्धयोग' के पाठक यह जान सकेंगे कि कबीर ने किस प्रकार अपने जीवन-सिद्धान्तों को जन-जीवन के हित में फैलाया। कबीर सचमुच समदर्शी थे और हिन्दू तथा मुसलमान सभी पर उनकी कृपा-दृष्टि बिना किसी भेद-भाव के समान रूप से पड़ती रहती थी। यही कारण है कि हिन्दुओंके समान मुसलमानों में भी उनके शिष्य प्रसिद्ध संत हुए हैं। दोनों ही सम्प्रदायों ने उन्हें अपना सद्गुरु स्वीकार किया है और हजारों, लाखों व्यक्ति उनके जीवनादर्शों से प्रभावित रहे हैं। कबीर की ख्याति न केवल हिन्दुस्तान में किन्तु हिन्दुस्तान से बाहर भी दूसरे मुल्कों में पहुँच चुकी थी। 'सिद्धयोग' के पिछले किसी अंक में मैं यह बता चुका हूँ कि अरब के बादशाह ने अपने प्राणहीन पुत्र को जीवित करने के लिए हिन्दुस्तान के तत्कालीन बादशाह अकबर के माध्यम से कबीर को अपने यहाँ बुलाया था और वे अकबर के वजीर फौजों के साथ शाही मेहमान के रूप में अरब गये थे। वहाँ पहुँचकर चमत्कारपूर्ण ढङ्ग से बादशाहके मृत बालकको जीवित करके उन्होंने न केवल अपना सम्मान बढ़ाया, किन्तु अपने देश हिन्दुस्तान की शान और गौरव को भी ऊँचा किया। कबीर ने अरब के समान बलख-बुखारे की यात्रा भी वहाँ के सुल्तानके निमंत्रण पर की थी और वहाँ पर भी उन्होंने सुल्तान का वह काम पूरा किया था जिसके लिए वे बुलाये गये थे। इसमें सन्देह करनेकी गुञ्जायश नहीं है कि कबीर अपने समयके सर्व शक्तिमान् महापुरुष थे।

हजरत मंसूर जिनका जिक्र मैं इस लेख में करने जा रहा हूँ एक सूफी फकीर थे। सूफी फकीर सत्य के अधिक नजदीक होते हैं। प्राण देकर भी वे सचाई की रक्षा करना चाहते हैं। रोम के एक और मशहूर सूफी फकीर मौलाना रूमके बारे में यह कहा जाता है कि वह आम मुसलमानों की तरह पुनर्जन्म के विरोधी नहीं, किन्तु समर्थक थे, उन्होंने

अपनी यह बात बहुत ही निर्भीकता से प्रकट की थी कि मैं सब्जी की तरह इस आलम में कई बार उगा हूँ। ७७० कालिब (शरीर) मैंने देखे हैं यानी मैं इस दुनिया ७७० बार जन्मा और मरा हूँ।

इस तरह सूफी फकीर मौलाना रूम को अपने पिछले ७७० जन्मों का ज्ञान था और अपने इस ज्ञानको मुसलमानों पर उन्होंने खुल कर प्रकट कर दिया था। उनकी नीचे की पंक्तियां प्रसिद्ध हैं—

हम चूं सब्जा बारहा रुयीदाअम,
हफ्त सद हफ्ता कालब दीदाअम।

मौलाना रूमने मुसलमानों द्वारा जानवरों को मारकर उनका गोश्त खाने की रिवाज का भी विरोध किया था, उनका यह विश्वास था कि बेगुनाह जानवरों को मारकर जो गुनाह किया जाता है उसका अंजाम इन्सान को मौजूदा या अगले किसी जन्ममें जरूर भोगना पड़ेगा। अगर तुमने एक परिन्दे को भी दुःख पहुँचाया है तो उसका जो पाप होता है वह एकान्त में बैठकर खुदा की पूजा करने, नमाज पढ़ने और हजारों को खैरात करने से भी नहीं हटता। इत्यादि।

यह विश्वास कबीर साहब का ही विश्वास था, कबीर स्वामी ने इस सिलसिले में अपना मत प्रकट करते हुए कहा है कि मांसाहारी लोगों को भगवान के दर्शन कदापि नहीं हो सकते। कबीर की इस प्रकार की मान्यतायें उनके शिष्यों में भी समावेश थीं, जो उनकी जीवन घटनाओं से प्रकट होता है। शेख मंसूर बगदाद के रहने वाले थे। पूर्वजन्म के पुण्यों के फलस्वरूप सद्गुरु श्री कबीरदास जी के दर्शन इन्हें बाल्यावस्था में ही हुए थे।

इस प्रथम भेंट में ही कबीर स्वामी ने बालक में सन्निहित उसकी ईश्वर भक्ति की ओर जाने की तीव्र अभिलाषा को भांप लिया और उसे परामर्श दिया कि वह 'सोहम्' शब्द की भावना को अपने मन और वाणी का विषय बनाये। सोहम् शब्द का अर्थ अरबी भाषा में 'अनलहक' होता है जिसे हिन्दी में मैं ही वह खुदा हूँ, ऐसा कहा जा सकता है।

कबीर साहब के इस परामर्श को शिरोधार्य कर मंसूर अनलहक, अनलहक का आठो-याम तन्मयता से जप और उच्चारण करने लगे। उन्होंने कबीर को अपना सद्गुरु स्वीकार किया और गुरु दीक्षाके रूपमें अनलहक या सोहम् को ही गुरु मंत्र के रूप में अंगीकार कर अपने को कृतार्थ समझा।

सन्त कबीर से मंसूर ने इसी अवसर पर अपने मन की इस आकांक्षा को भी प्रकट कर दिया था कि वे अपनी वर्तमान कालिब (शरीर) से शीघ्र छुटकारा चाहते हैं और यह भी उनकी इच्छा है कि वे जब इस शरीर को छोड़ें तो उनके शव को हिन्दू रीतिके अनुसार

जलाकर राख कर दिया जाय। कहते हैं कि कबीर साहब ने मंसूरको यह कहकर आश्वस्त किया था कि तुम्हारे अन्तिम संस्कार की व्यवस्था तुम्हारी इच्छा के अनुसार वे लोग स्वयं करने को विवश होंगे, जो तुम्हारे जीवन के अन्त करने का कारण बनेंगे। इस आश्वासन के बाद मंसूर अपने सोहम् या अनलहक के जप की साधना करने के लिए पर्वत की किसी कन्दरा में चले गये।

मंसूर की बहन का नाम अनला था। जब उसने सुना कि मेरे भाई ने हिन्दुस्तान के मशहूर फकीर कबीर स्वामी से दीक्षा लेली है तो वह भी पीछे न रही और उसने भी कबीर जी से गुरु-दीक्षा ग्रहण करली। कबीर ने अनला को भी सोहम् मन्त्र की दीक्षा देकर दीक्षित कर दिया।

मंसूर अपनी एकान्त साधना में लगभग बीस वर्ष तक लगे रहे। इस लम्बी अवधि में पर्वत की एकान्त कन्दरा ही उनका अपना घर रहा। सात्विक आहार प्राप्त करके, जो जंगली फल और कन्दमूल के रूप में होता था, वे अपना जीवन बिताते रहे। इस सात्विक आहार और एकान्त जप साधना के फलस्वरूप उनकी सात्विक वृत्तियां और भी बलवती हो गईं तथा अपनी लम्बी और अनन्य जप-साधना के बाद वे जब कन्दरा-प्रवास को छोड़कर बाहर आये, तब उनमें अत्यधिक आत्म-विश्वास, दृढ़ संकल्प, आभा तथा ओज का समावेश पाया गया। वे बड़ी निर्भयता से मुसलमानों में प्रचलित कुर्बानी के नाम पर बे-गुनाह जानवरों को मार कर उनको खाने की प्रथाका विरोध करने लगे। उन्होंने अहिंसा के मार्ग को अपनाने की अपील लोगों से की और कहा कि किसी को भी हिंसा करके उससे अपना पेट भरना सबसे बड़ा गुनाह है। जो लोग बिस्मिल्ला उल रहमान रहीम कहकर कुर्बानी करते हैं वे भी बड़ा पाप ही करते हैं।

मंसूर का यह विचार-प्रचार कट्टर पंथी आम मुसलमानोंको पसन्द नहीं आया। उन्होंने मंसूर के बारे में यह दुष्प्रचार करना शुरू किया कि वह तो मुसलमानी मजहब का घोर निन्दक और हिन्दू मजहब का समर्थक हो गया है। कुर्बानी जैसे पवित्र काम की यह निन्दा करता है, हम लोगों को पापी कहता है। इस मत से सभी सहमत हुए और सबने मिलकर उसे यन्त्रणा देकर मार डालने का निश्चय किया। एक स्थान पर सब इकट्ठे हुए और मंसूर को आता देखकर उन पर आक्रमण करने का इरादा किया। मंसूर ने उनकी यह दुर्भावना ताड़ली और वह उनके देखते देखते ही लापता होगये। बहुत खोजने पर भी उनका कहीं पता न चला।

जब कबीर साहब मंसूर के मुल्कमें मौजूद थे तब मंसूर की बहन अनला कबीर साहब से मिलने अक्सर रात में जाया करती थी। लोगों को इस सम्बन्ध में नाना प्रकार की भ्रान्तियां थीं। एक दिन स्वयं मंसूर ने अनला का पीछा किया उसने देखा अनला कबीर के सामने बैठी अपनी आध्यात्मिक जिज्ञासा का समाधान कर रही है—वह भी प्रकट रूप में वहीं जाकर बैठ गया—इसी बीच चमत्कार-पूर्ण ढंग से एक प्याला कबीर साहब के हाथ में आया जिसे उन्होंने अनला को पीने को दे दिया। अनला जब उसे पी चुकी तो उसी में शेष रही कुछ बूँदों को मंसूर ने पी लिया। दोनों उस प्याले के द्रवको पीकर सोहम्-सोहम्

की ध्वनि करते हुए तन्मय होकर आन्तरिक सुख का आनन्द लेने लगे।

मंसूर को सोहम्-सोहम् अथवा अनलहक-अनलहक के रात-दिन के प्रचार से मुसलमानों ने तंग आकर बादशाह से शिकायत की कि जहाँपनाह! मंसूर अपने को खुदा बताकर कुरान-शरीफ के सिद्धान्तों के विरुद्ध प्रचार कर रहा है। हमारे मजहबी उसूलोंके अनुसार इन्सान कभी खुदा नहीं हो सकता न वह इस जमीन पर आकर अवतार लेता है। अपने को खुदा मशहूर करने वाला मंसूर एक काफिर है इसे उसको गुनाह की सजा जरूर दी जाय। बादशाह ने लोगों की इस राय के आधार पर सारे राज्य के निवासियों को हुक्म दिया कि मंसूर को एक-एक पत्थर मारें। मंसूर को पकड़ कर एक जगह खड़ा किया गया और सभी राज्य के निवासियों ने आ-आकर उसके एक-एक पत्थर मारना शुरू किया। मंसूर पर पत्थर पड़ते रहे, लेकिन वह मस्त होकर अनलहक-अनलहक कह कर मुस्कराते हुए पत्थरों की चोट सहता रहा। पीड़ा या शिकवा की एक भी रेखा उसके चेहरे पर नजर न आई।

मंसूर की बहन अमला भी वहाँ यह खेल देख रही थी। बादशाह जब आये तब पूछा तुमने पत्थर मारा या नहीं—अमला ने कहा जहाँपनाह! मंसूर मेरा भाई है मैं उसे कैसे मार सकती हूँ। बादशाह ने कहा अच्छा पत्थर न सही तू उसे एक फूल ही मार दे। राजाज्ञा का पालन हो जायेगा। अमला ने एक फूल उठाकर मंसूर पर फेंक दिया। फूल के लगते ही मंसूर वेदना से कराह कर रोने लगा। अमला ने पूछा तू पत्थरों की चोट खा कर मुस्करा रहा था लेकिन फूल के छूने से रोने क्यों लगा? मंसूर बोला तू मेरी सगी बहन है—फिर भी मुझे मारने को तेरा हाथ उठ गया—यह अनहोनी बात ही मुझे पीड़ाकारक हो रही है।

जब मंसूर पत्थरों की चोट से न मरा तब उसे बादशाह के हुक्म से जेल में डाल दिया गया लेकिन बादशाह के आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब लोगोंने आकर बतलाया कि मंसूर तो जेल के सीकचों से बाहर बैठा बैठा अनलहक अनलहक का उच्चारण कर रहा है। जब बादशाह ने जाकर देखा तो हजरत मंसूर जेल के सीकचों में तालों के अन्दर बैठे नजर आये। ऐसे थे उनके 'सोऽहम् जप' के चमत्कार जो कबीर की दीक्षा के फलस्वरूप उन्हें प्राप्त हुए थे।

मुल्ला-मौलवियों के आग्रह पर अन्त में बादशाह ने मंसूर को सूली पर चढ़ाकर मार देने का हुक्म दिया। इस हुक्म को सुनकर मंसूर को कोई रंजोगम न हुआ। जब जल्लाद उसे सूली पर चढ़ाने ले चले, तब भी वह मस्ती से अनलहक-अनलहक की ध्वनि करने लगा।

जैसे ही सूली के तख्ते पर चढ़ाया गया वैसे ही एक फकीर भागा हुआ आया और चिल्लाकर कहा, मंसूर थोड़ा रुको मुझे तुमसे दो सवाल पूछने हैं। अधिकारियों ने आज्ञा दी—मंसूर ने कहा, पूछो? आगन्तुक का पहला सवाल था भगवान का जिस नई दुनियामें तुम जा रहे हो वहाँ तक पहुँचने के लिए कितने कदम उठाने पड़ते हैं। मंसूर ने कहा सिर्फ दो कदम। मेरी तरफ देखो, मेरा एक कदम इस दुनिया में है और दूसरा कदम भगवान की दुनिया में

है। बस, यही तो फ़र्क का अन्तर इस दुनिया और भगवान की दुनिया में है।

दूसरा सवाल उसने पूछा, उस दुनिया में जाने के लिए किस सामान को साथ ले जाने की ज़रूरत होती है। मंसूर ने हँसकर कहा—किसी भी सामान की ज़रूरत नहीं होती। मेरी ओर देखो, मैं वहाँ जा रहा हूँ और कोई भी सामान साथ नहीं ले जा रहा हूँ—खाली हाथ ही मेरी तरह वहाँ सब कोई जाते हैं। इसके बाद मंसूर का आमान्त तुरन्त ही शूली पर लटकाकर कर दिया गया। मंसूर के प्रशंसकों और भक्तों को बड़ा दुःख हुआ। लोगों ने देखा चारों ओर घोर अन्धकार छाया हुआ है और चारों ओर पानी ही पानी बरस रहा है। सर्वनाश और प्रलय का दृश्य सबके दिलों को कम्पायमान कर रहा है। मंसूर ने प्राण-विसर्जन की वेला में देखा उसके दीक्षागुरु श्री कबीर उसके सामने हँस रहे हैं और कह रहे हैं, चाहे कुछ भी क्यों न हो, सचाई के रास्ते से कभी पीछे न हटना।

हुआ भी यही। मंसूर शूली पर चढ़ा दिया गया, लेकिन अपने जीवन में वरण किये गये सिद्धान्तों का अनेक संकट उठाकर भी उसने परित्याग नहीं किया। इतिहास के पृष्ठों में उसकी सत्यप्रियता की कहानी सदा दूसरों को अपने सिद्धान्तों पर कायम रहने की प्रेरणा देती रहेगी। मंसूर के जीवन की एक और घटना है जिसका उल्लेख करना आवश्यक है। वह है कि उसके अन्तिम संस्कार की। मंसूर ने अपने सद्गुरु से यह वर माँगा था कि मेरा शव-संस्कार हिन्दू धर्म के अनुसार हो। सद्गुरु ने यह कहकर उसे आश्वस्त किया था, कि ऐसा ही प्रबन्ध वे करेंगे जो तुम्हारा प्राणोत करेंगे। हुआ भी यही।

शूली देने के बाद जब बादशाह ने उसके शव को कब्र में गाड़ देने का विचार किया तो वातावरण में अनलहक़ अनलहक़ के शब्द की गूँज सबको सुनाई दी। बादशाह ने कहा मरने के बाद भी इसकी लाश की मौजूदगी अनलहक़ अनलहक़ सुना रही है तब तो कब्र में दफनाने के बजाय इसे जलाकर राख कर देना बेहतर रहेगा।

बादशाह का आदेश पालन किया गया। कर्मचारियों ने लकड़ी लाकर चिता तैयार की और मंसूर के शव को उस पर रख कर भस्म कर दिया गया। इसके तुरन्त बाद ही हवा के ठंडे ठंडे झोंके आये और उन झोंकों ने मंसूर के शव की राख को आकाश में चारों ओर बखेर दिया। अनलहक़ अनलहक़ की आवाज़ फिर सबने बड़ी स्पष्टता से सुनी—कौन कहाँ से बोल रहा है यह किसी की समझ में नहीं आया। आता भी कैसे जिनके हृदय राग-द्वेष घृणा और अहं से भरे होते हैं उन्हें ईश्वरीय सत्य की अनुभूति हो ही नहीं सकती।

मंसूर के जीवन का इस तरह पटाक्षेप हुआ और संत कबीर के वरदान के फलस्वरूप उसका शव संस्कार अनायास ही उस प्रथा के अनुसार हो गया जिसकी इच्छा उसने व्यक्त की थी।

(शेष टाइटिल के तीसरे पृष्ठ पर देखें)

आवश्यक सूचना

सागर में

योग-प्रचार-समारोह

सद्गुरुदेव योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

का

शुभागमन

सत्संग प्रेमी समस्त भाई-बहिनों से निवेदन करते हुए अपार हर्ष हो रहा है कि हम सबकी अनुनय-विनय को स्वीकार करके अनन्त कोटि योगयोगेश्वर प्रातः स्मरणीय सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज दिनांक १७ नवम्बर सन् १९७६ ई० को सागर पधार रहे हैं। श्री महाराज जी २६ नवम्बर तक सागर में निवास करेंगे।

मध्य-प्रदेश के बुन्देलखण्ड अंचल में श्री चरणों का प्रथम आगमन हमारा अहोभाग्य है। ऐसे शुभ अवसर पर हमारी हार्दिक इच्छा है कि सभी सत्संग-प्रेमी भाई-बहिन अवश्य आवें एवं प्रातः सायं दोनों समय नैत्यिक सत्संग में सम्मिलित होकर लाभ उठावें। हम इस सहयोग के लिए आपके आभारी होंगे।

सागर प्रवास के दौरान श्री महाराज जी का पता :—

द्वारा श्री आर० के० सिंह कुशवाह

अधीक्षक (मंत्री) जल प्रदाय

परकोटा, सागर (म० प्र०)

दूरभाष नं० २२८६ (घर)

निवेदक—

श्री सिद्धगुफा योग-प्रचारक मंडल

सागर संभाग, सागर (म० प्र०)

श्री सद्गुरुदेव जी के

आगामी योग-प्रचार कार्य-क्रम

दिनांक		विवरण
८-१२-७६ को	....	जौनपुर के लिए प्रस्थान
८-१२-७६ से ११-१२-७६ तक		योग-प्रचार कार्यक्रम, जौनपुर पता—द्वारा अशोककुमार कपूर २६, [illegible], जौनपुर
१२-१२-७६ को	....	वाराणसी के लिए प्रस्थान
१२-१२-७६ से १८-१२-७६ तक		योग-प्रचार कार्यक्रम, वाराणसी पता—द्वारा डा० [illegible] शर्मा ३०/६३ [illegible] ([illegible]), वाराणसी-१
१९-१२-७६ को	....	धनबाद के लिए प्रस्थान
१९-१२-७६ से २०-१२-७६ तक		योग-प्रचार कार्यक्रम, धनबाद पता—द्वारा डा० [illegible] अग्रवाल [illegible] मुहल्ला, पानी की टंकी के पास धनबाद (बिहार)
२१-१२-७६ को	....	कलकत्ता के लिए प्रस्थान
२१-१२-७६ से २८-१२-७६ तक		योग-प्रचार कार्यक्रम, कलकत्ता पता—४०, हरियाणा भवन विवेकानन्द रोड, कलकत्ता-७
२९-१२-७६ को	—	कछवा के लिए प्रस्थान
३०-१२-७६ से २-१-७७ तक		योग-प्रचार कार्यक्रम, कछवा पता—स्वामी [illegible] [illegible] पो० कछवा, मिर्जापुर (उ० प्र०)

श्री सद्गुरुदेव जी के

आगामी योग-प्रचार कार्यक्रम

दिनांक		विवरण
२३-१०-७६ से २८-१०-७६ तक		योग प्रचार कार्यक्रम, आगरा पता—द्वारा डा० पुष्पपालसिंह सिसोदिया, डिस्ट्रिक्ट जेल आगरा, आगरा।
२९-१०-७६ को	कानपुर के लिए प्रस्थान	
२९-१०-७६ से ६-११-७६ तक		योग-प्रचार कार्यक्रम, कानपुर पता—द्वारा डा० भगवतस्वरूप चतुर्वेदी ४८/१३ हाटी मोहाल, कानपुर
७-११-७६ को	लखनऊ के लिए प्रस्थान	
८-११-७६ से १६-११-७६ तक		योग-प्रचार कार्यक्रम, लखनऊ पता—द्वारा डा० मोहनलाल ठेकेदार ८१/२० शाहनूर रोड, शिवपुरी, लखनऊ
१७-११-७६ को	सागर के लिए प्रस्थान	
१८-११-७६ से २६-११-७६ तक		योग प्रचार कार्यक्रम, सागर पता—द्वारा डा० रमेशकुमारसिंह कुशवाह अधीक्षक (मंत्री) अस्त प्रकाश, परकोटा वार्ड, सागर (म० प्र०) पिन-४७०-००२
२७-११-७६ को	करनाई आश्रम के लिए प्रस्थान	
२८-११-७६ से ३-१२-७६ तक	योग-प्रचार कुराली, जि० करनाल, द्वारा श्री किशनलाल जी	
४-१२-७६ से ७-१२-७६ तक		योग-प्रचार कार्यक्रम, मिर्जापुर पता—द्वारा वैद्य मक्खनलाल डबर वैद्य सोमनाथ आयुर्वेद भवन, डंकीनगंज, मिर्जापुर

(पृष्ठ ८ का शेष)

यह भी कहा जाता है कि हजरत मंसूर का एक मित्र था जिसका नाम था शिबली। शूली से बचने के लिए शिबली ने मंसूर को परामर्श दिया था कि अनलहक-अनलहक कहना छोड़ दे तो बादशाह निश्चय ही तुम्हें क्षमा कर देगा। मन ही मन में भले ही अनलहक कहते रहो, पर जाहिरा में इसे छोड़ दो। लेकिन शिबली के इस परामर्श को मंसूर ने स्वीकार नहीं किया। प्रश्नोत्तर के रूप में इस घटना का वर्णन एक कवि ने इस प्रकार किया है :—

मंसूर से शिबली ने कहा जरा होश में आओ, बोला कि बहुत दूर हूँ अब आ नहीं सकता।
क्या मजा है तुमको जान देने में बतलाओ? गूँगे को मिठाई है कि बतला नहीं सकता!
जो रहा है बोल अब मंसूर तुम्हारा! बिना सर दिये दीदार कोई पा नहीं सकता।

योग के सिद्धान्त और शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक

संस्थापक संपादक तथा संरक्षक
योगिराज अनंत श्री चन्द्रमोहनजी महाराज

मेरी प्रतिज्ञा

मेरी प्रतिज्ञा है,
कि सृष्टि और संसार
सब सुखमय करूँगा।
इसके लिए
मनों के समूह में जाऊँगा,
हृदय-पुंडरीक को पाट लूँगा,
नाना साधन करूँगा,
और सारे साधनों के फलस्वरूप —
ईश्वर-दर्शन प्राप्त करूँगा।
फिर उससे भेंट होने पर
हर पदार्थ पर उसी का रंग चढ़ेगा,
और मेरा लोप होगा,
मेरी प्रतिज्ञा पूरी होगी।

—ज्ञानेश

मुद्रक—[illegible]प्रसाद शर्मा 'निर्भय' [illegible] प्रेस [illegible], वाराणसी